I will provide you more Evidences regarding Extreme US interference in Indian Politics & Parliament within a week.

(Evidences are attached herewith)

America का भारत की राजनीती मे हस्तक्षेप इस कदर बड़ चुका है कि भारत की संसद मे कोन सा बिल पास होगा और कोन सा नहीं ये America तय करता है। अगर प्रणव मुखर्जी वित्त मंत्री बनते हैं तो America चिंता मे पड़ जाता है और इसका विरोध करता है और इसकी तहकीकात की जाती है।

American राजदूत और विदेश मंत्री लगातार भारतीय नेतायों से सीधी मुलाकात कर रहे हैं। उन्हें प्रलोभन दिए जाते हैं, America आने का न्योता दिया जाता है और भ्रष्ट सरकार भी इसका विरोध नहीं करती।

अफसोस ये है कि हमारे देश मे बिकने वाले नेतायों की कमी नहीं।

ये बहूत ही गम्भीर विषय है क्योंकि America ने अपनी इन्हीं कूट-नीतियों से पश्चिमी देशों मे (जैसे ट्यूनीशिया, मिस्र, अल्जीरिया, मौरिशेनिया, जॉर्डन, यमन, लीबिया, मोरक्को, फिलिस्तीन, इजराइल, इराक, लेबनान, अफगानिस्तान, सीरिया आदि देशों में) लोकतंत्र को इतना कमज़ोर कर दिया कि वहां पिछले कई सालों से एक ही हकूमत का शासन चल रहा है। America की मदद से तानाशाही सरकार या तो विपक्ष को खरीद लेती है या मिटा देती है। जिसकी वजह से आज इन देशों मे अमीरी और गरीबी के बीच फासला इतना बढ़ गया है कि जनता ने बेरोज़गारी, गरीबी, मंहगाई, भुखमरी और भ्रष्टाचार से त्रस्त होकर अपने देशों की तानाशाही हकूमतों के खिलाफ विद्रोह शुरू कर दिया है। जिसमे हजारो लोग मर रहे हैं।

America को फायदा ये होता है कि वो बिना रोक-टोक इन देशों के खनिज पदार्थ खासकर पैट्रोलियम को अपने देश मे आयात कर लेता है। और अपने सैनिक अड्डे भी इन देशों स्थापित करता है।

America अब भारत मे भी यही हालात पैदा कर रहा है और काफी हद तक कर भी चुका है। इसके बारे मे जानते सभी हैं पर बात कोई नहीं करता।

भारत मे तो ये काम और भी आसान है क्योंकि हज़ारों भ्रष्ट नेताओं का काला पैसा World /Swiss Banks मे जमा है और कारोबार European Countries मे, जिसका काला-चिट्ठा America के पास है।

आज अपने काले कारनामो की वजह से ही विपक्ष नपुंसक बन के रह गया है और सत्ता पक्ष से समझोता कर चुका है और दोनो मिल कर भारत को America के हाथों बेच रहे हैं।

अगर भ्रष्टाचार की इस असली जड़ का खुलासा कर दिया जाए तो ....

- इसके इलावा देश मे गोदाम जानबूझ कर नहीं बनाए गए। ताकी विदेशी कंम्पनीयों के भारत आने का एक बहाना त्यार हो। नहीं तो गोदाम बनाना सरकार के लिए कोई मुशकिल काम नहीं।
- किसी भी किराने की दुकान मे कम-से-कम 60 % माल सिर्फ American Companies को होता है। चीन तो America को जवाब दे चुका है, अब America को सिर्फ भारत का ही सहारा है क्योंकि America की satellite (war) industry तो इस वक्त डूबी पड़ी है और वहां मंदी चरम सीमा पर है।
- GATT (General Agreement on Tariffs and Trade) जैसी तानाशाह नीतियों के तहत Subsidy ओर स्वदेशी संस्थायों को खत्म करना सरकार की मजबूरी है जिससे American Companies का भारतीय बाजार मे आना आसान हो जाएगा ओर जिसकी वजह से भारतीय बाजार मे उनकी Monopoly ओर बढ जाएगी जो गुलामी का सूचक है

पश्चिम एशिया में क्रांतिः (सत्ता परिवर्तन)लोकतंत्र के लिए

जब भी किसी देश में लोग सड़कों पर बेरोज़गारी, महंगाई, ग़रीबी या किसी अन्य मांग को लेकर सरकार के खिला़फ लामबंद होते हैं तो उसे आंदोलन कहा जाता है. लेकिन जब कोई आंदोलन विद्रोह का रूप ले लेता है, जब किसी आंदोलन का मक़सद सत्ता परिवर्तन होता है तो उसे क्रांति कहते हैं. मिस्र में जो हो रहा है, वह महज़ कोई जनाक्रोश नहीं, कोई साधारण आंदोलन नहीं, बल्कि एक क्रांति है. एक ऐसी क्रांति, जो स़िर्फ मिस्र तक सीमित रहने वाली नहीं है, बल्कि पूरे पश्चिम एशिया में सत्ता परिवर्तन का माध्यम बनने वाली है.

ट्यूनीशिया के बाद मिस्र की घटनाओं से पश्चिम एशिया के देशों की तानाशाही की नींव हिल गई है. आंदोलन की आग ट्यूनीशिया से मिस्र और फिर अल्जीरिया, मौरिशेनिया, जॉर्डन, यमन और सऊदी अरब तक पहुंच चुकी है. समझने की बात यह है कि यह इलाक़ा पहले से ही दुनिया के लिए एक फ्लैश प्वाइंट बना हुआ है. फिलिस्तीन-इजराइल, इराक और अफगानिस्तान में अस्थिरता और अमेरिकी सेना की मौजूदगी, लेबनान का संकट और न्यूक्लियर मुद्दे को लेकर ईरान पर हमले की आशंका के बीच ये आंदोलन हो रहे हैं. ये आंदोलन किसी पार्टी या किसी नेता या किसी विचारधारा की वजह से नहीं शुरू हुए हैं. जंगल की आग की तरह ये आंदोलन शुरू हुए हैं. इसलिए ये ज़्यादा खतरनाक और ज़्यादा असरदार हैं. ऐसे आंदोलनों को नियंत्रित कर पाना किसी भी सरकार के लिए मुश्किल होता है. समझने वाली बात यह है कि मिस्र का आंदोलन किन्हीं आकस्मिक कारणों से नहीं हुआ है. लोग परेशान थे और जब उन्होंने देखा कि ट्यूनीशिया में किस तरह जनता ने आंदोलन किया, उससे उनकी हिम्मत बढ़ी और आंदोलन शुरू हो गया. एक बार लोग सड़क पर उतरे, उसके बाद लोग जुड़ते चले गए. एक ऐसा आंदोलन खड़ा हुआ, जो अरब वर्ल्ड के अब तक के इतिहास का सबसे बड़ा आंदोलन बन गया.

मिस्र में जनता की नाराज़गी की चार प्रमुख वजहें हैं. पहली वजह आर्थिक है. मिस्र में बेरोज़गारी है, महंगाई है. पूरी अर्थव्यवस्था एकाधिकार में फंसी हुई है. सरकार ने पूंजीपतियों को खुला छोड़ दिया है ग़रीब और मध्यम वर्ग का शोषण करने के लिए और ऐसे पूंजीपतियों ने लोगों का खून चूस लिया है. दूसरी वजह है प्रशासनिक संवेदनहीनता. यहां के सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार और कुशासन का बोलबाला है. तीसरी वजह सामाजिक है. मिस्र का युवा वर्ग विमुख हो गया है और शिक्षा प्रणाली बेकार हो गई है. मिस्र का एजूकेशन सिस्टम भी लचर है. जिस तरह की पढ़ाई होती है, वह नई पीढ़ी की आशाओं पर खरी नहीं उतरती. युवा पीछे छूटते जा रहे हैं. मिस्र में स्वास्थ्य सेवाओं की हालत और भी खराब है. जनता के पास पीने का सा़फ पानी तक नहीं है. जो पानी मिलता है, वह पीने लायक नहीं है. वह दूषित है, लेकिन लोगों को वही पानी पीना पड़ता है. मिस्र के किसानों की हालत सबसे खराब है. वहां किसानों का जीना हराम हो गया है. उनके लिए कोई योजना नहीं है. चौथी और सबसे महत्वपूर्ण वजह है राजनीतिक. राष्ट्रपति और सत्तारूढ़ दल समय के साथ-साथ तानाशाह होते चले गए हैं. भ्रष्टाचार करने वालों पर किसी तरह का कोई अंकुश नहीं है. उन्हें कोई सज़ा नहीं मिलती है. वे क़ानून का मखौल उड़ाकर साफ़-साफ़ बच निकलते हैं. जनता इस अत्याचारी व्यवस्था से मुक्ति चाहती है. हाल में हुए चुनावों में जो धांधली की गई, उससे जनता का गुस्सा उबल पड़ा है. मिस्र की जनता अब अपने फैसले खुद लेना चाहती है. मिस्र के लोग अब प्रजातंत्र चाहते हैं, सरकार चलाने में अपनी हिस्सेदारी चाहते हैं, ताकि वे अपने भविष्य का निर्माण खुद कर सकें और देश के संसाधनों को देश की जनता के लिए इस्तेमाल कर सकें. इसलिए मिस्र के क्रांतिकारी देश में प्रजातंत्र लागू करने की मांग कर रहे हैं.

अरब देशों में मिस्र सबसे बड़ा है. इसकी आबादी 80 मिलियन है यानी 8 करोड़. यह एशिया और अफ्रीका के बीच का देश है, इसलिए सामरिक और कूटनीतिक दृष्टि से इसका महत्व दूसरे अरब देशों से कहीं ज़्यादा है. 1952 से 1970 के बीच जनरल गमाल अब्देल नासिर के शासनकाल में मिस्र पूरे अरब वर्ल्ड पर हावी था. उनके बाद अनवर सदात और होस्नी मुबारक सत्ता में आए, जिन्होंने मिस्र के वर्चस्व को बरक़रार रखने के लिए अमेरिका के साथ दोस्ती कर ली, लेकिन इससे कुछ अरब देशों में मिस्र का प्रभुत्व तो कम हुआ, लेकिन अपने इतिहास और सामरिक कारणों से यह अरब देशों के दिलोदिमाग से उतर नहीं सका. यही वजह है कि तानाशाही का जो रूप मिस्र में है, वह अरब के दूसरे देशों के लिए एक मॉडल बन गया. मिस्र के तानाशाह होस्नी मुबारक के जाते ही अरब देशों के तानाशाह भी ताश के पत्तों की तरह बिखरने लगेंगे. वैसे भी पश्चिमी एशिया में यह कहा ही जाता है कि मिस्र में जो भी होता है, वह सारे अरब देशों में फैल जाता है. यह बात फिर से सही साबित हो रही है. जिस तरह मिस्र में लोग सरकार के खिला़फ आंदोलन कर रहे हैं, वैसा ही कुछ अरब के दूसरे देशों में शुरू हो गया है. प्रजातंत्र का यह आंदोलन पूरे पश्चिम एशिया में भड़क उठा है. कहीं यह आग दिख रही है और कहीं यह आग आने वाले दिनों में दिखने वाली है. अरब देशों में शुरू से ही तानाशाह शासकों-राजाओं और राजकुमारों की सत्ता रही है. इस निरंकुशता के खिला़फ जब भी किसी ने आवाज़ उठाई, उसे बेदर्दी से दबा

दिया गया. इसीलिए पश्चिम एशिया में एक कहावत बन गई है कि शासक वर्ग एक पहाड़ की तरह है और उसका विरोध करना अपने सिर को पहाड़ में मारने जैसा है.

लेकिन ट्यूनीशिया और मिस्र में जो हो रहा है, उससे यह कहावत झूठी साबित हो रही है. ट्यूनीशिया और मिस्र में जो हुआ, वह सभी अरब देशों के लिए सबक है. अगला नंबर उन्हीं का है. ये देश हैं अल्जीरिया, जॉर्डन, लीबिया, सीरिया, यमन और मोरक्को. मिस्र की तरह ही सऊदी अरब में भी राजाओं का राज चलता है. सऊदी अरब की जनता भी सरकार के ज़ुल्म को चुपचाप सहती है, अपना मुंह खोलने से डरती है. पूरा पश्चिमी एशिया ही इस तरह की हुकूमतों के हाथ में है. सत्ता में जनता की हिस्सेदारी नहीं है, सरकार की नीतियों में जनता का कोई दखल नहीं है. कुछ देशों में धर्म की आड़ में निरंकुश सत्ता है तो कुछ देशों में आज भी सत्ता पर जन्म सिद्ध अधिकार मानकर डायनेस्टी रूल चल रहा है. अरब देशों के संगठन अरब लीग के बाइस सदस्य हैं. इनमें से एक भी देश पूरी तरह लोकतांत्रिक नहीं है. इन देशों की जनता ग़रीब है, सरकार की नीतियां स्थिर और संतुलित नहीं है. लोकतंत्र के सबसे क़रीब है लेबनान, लेकिन यह भी आतंरिक समस्याओं से जूझ रहा है. इन देशों के सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है. फिलिस्तीन में पाक-साफ़ चुनाव हुए थे, लेकिन जीतने वाली हमास पार्टी को सत्ता पर काबिज नहीं होने दिया गया. मोरक्को और कुवैत में बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था है, लेकिन इन देशों में आज भी राजा का फरमान ही क़ानून है. सीरिया में भी लगभग यही स्थिति है. ज़्यादातर देशों में पुराने राजाओं ने नए राजवंशों को जगह दे दी है.

मिस्र में जिस तरह लोगों ने हिम्मत दिखाई है, वह अरब के दूसरे देशों के लोगों को आंदोलन के लिए प्रेरित करेगी और पूरे इलाके में प्रजातंत्र के लिए आंदोलन हो सकते हैं. ऐसा इसलिए भी होगा, क्योंकि पश्चिम एशिया का मध्यम वर्ग, कामकाजी वर्ग और बुद्धिजीवी हक़ीक़त का सामना करने के लिए तैयार हो गए हैं. पश्चिम एशिया के लोगों को लगता है कि उनकी सरकार न तो उनकी परेशानियां खत्म कर सकती है, न ही उनके भविष्य को उज्ज्वल बना सकती है. आज का दौर इंटरनेट और टेलीविजन का दौर है. पश्चिम एशिया के पढ़े-लिखे मध्य वर्ग को यह पता है कि बाक़ी दुनिया किस तरह आगे जा रही है और वे किस तरह वक़्त की इस दौड़ में पीछे छूट रहे हैं. पश्चिम एशिया के मध्य वर्ग ने अपनी ज़िम्मेदारी समझ ली है. यही वजह है कि फेसबुक से शुरू हुआ यह आंदोलन

विश्व स्तर पर अपना महत्व दर्ज करा रहा है.

यह आंदोलन पश्चिम एशिया के सुल्तानों के लिए खतरनाक साबित होने वाला है. इसकी वजह साफ़ है. जो हालात मिस्र में हैं, वही हालात पश्चिमी एशिया के हर देश में हैं. यह दुनिया का वह इलाक़ा है, जहां प्रजातंत्र की हवा तक पहुंचने से रोका गया है. वजह साफ़ है. पश्चिमी देशों और खासकर अमेरिका ने अपने स्वार्थ के लिए यहां के शासक वर्ग को अपने पक्ष में कर रखा है, ताकि वह बिना रोक-टोक यहां के खनिज खासकर पेट्रोलियम को अपने देश में आयात कर सके. पश्चिमी एशिया की ज़्यादातर सरकारें अमेरिका की पिछलग्गू हैं. यहां के लोग सरकार के कामकाज से, तानाशाही से तंग आ चुके हैं और अब प्रजातंत्र की खुली हवा में सांस लेना चाहते हैं. यह इतिहास के दरवाज़े पर एक दस्तक है. ट्यूनीशिया और मिस्र में जिस तरह आंदोलन हो रहे हैं, उससे तो यही लगता है कि इतिहास ने रुख मोड़ा है. प्रजातंत्र की हवा अब पश्चिम एशिया में बहने वाली है. मिस्र की क्रांति सिर्फ़ मिस्र तक सीमित नहीं रहने वाली, बल्कि यह प्रजातंत्र की चौथी लहर शुरू होने का संकेत दे रही है. ट्यूनीशिया और मिस्र का आंदोलन पश्चिम एशिया में क्रांति की शुरुआत है. अब इसे रोकने की ताक़त दुनिया की किसी भी सरकार में नहीं है. पूरा पश्चिम एशिया इतिहास के एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है, जहां से दो रास्ते जाते हैं, एक प्रजातंत्र की ओर, दूसरा गृहयुद्ध की तरफ़. यह पश्चिम एशिया के तानाशाहों को तय करना है कि वे अपने देश को किस रास्ते पर ले जाना चाहते हैं. अगर उनमें देशप्रेम होगा तो वे प्रजातंत्र के लिए रास्ते बनाएंगे, सत्ता में आम जनता को हिस्सेदारी देंगे या फिर अपने देश के लोगों से एक ऐसी लड़ाई की शुरुआत करेंगे, जिसे जीतना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है.

Defects and anomalies of Globalisation & GATT (Treaty) [MEDIA अपनी जिम्मेदारियों को समझें

देश के MEDIA और देशवासीयों से अनुरोध है कि देश के प्रती अपनी जिम्मेदारियों को समझें :-

GATT (General Agreement on Tariffs and Trade) की तानाशाह नीतियों के तहत Subsidy ओर स्वदेशी संस्थायों को खत्म करना सरकार की मजबूरी है जिससे American Companies का भारतीय बाजार मे आना आसान हो जाएगा ओर जिसकी वजह से भारतीय बाजार मे उनकी Monopoly ओर बढ जाएगी जो गुलामी का सूचक है:-

देश केव्यापार,उद्योग,प्राक्रतिकसंसाधनों व उससेप्राप्त लाभांश को विदेशियों कोदेना देश कोआर्थिक रूप सेकमजोर करना है।देश के प्रतिष्ठित नेता, CRICKETERS और FILMSTARSजिन्हें देश केस्वाभीमानकी रक्षा करनी चाहिए वोही विदेशी कंम्पनीयों केदलाल बने बैठेहैं ।

हिन्दुस्तान को European Countries के products का गुलाम बनाने का काम बंद किया जाए। आज रोज़-मर्रा की ज़िदगी मे इस्तेमाल होने वाली हर चीज़ American Companies बना रहीं हैं। Indian Manufacturing Industries को भी मुकाबले मे खड़ा किया जाए। Competition होगा तो कीमतें घटेंगी। नहीं तो गरीब जनता की जेब से निकल कर पैसा मुनाफे के रूप मे American companies और उनकी Countries मे ही जाएगा ।

बढ़ता Import और घटता Export भारत के लिए अच्छा संकेत नहीं है। Globalisation के तहत Devaluation of Indian Currency इक शड़यंत्र है Developing countries के खिलाफ, जिसकी वजह से भारत का पैसा American Companies की कमाई) profit) के रूप में सस्ते मे ही America चला जाता है। चुंकी Import बड़ रहा है और Export घट रहा है तो GATT की परवाह किए बिना रुपऐ का मुल्य ओर बढाना चाहिए और Foreign Direct Investment (FDI) या FII के समय ही Devaluation होना चाहिए ।

हिन्दुस्तान का TV-मीडीया भी इसके खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाता और न ही GATT (General Agreement on Tariffs and Trade) की तानाशाह नीतियों के प्रती जनता को जागरूक किया जाता है जिनकी वजह से देश एक बार फिर European Products का गुलाम होता जा रहा हे ओर अपने स्वाभिमान को भूलता चला जा रहा है।

अगर इसी तरह American Companies/Products की Monopoly हर छेत्र में बनती रही ओर American/European Countries ने अपना असली रंग) मंहगाई के रूप में (दिखाना शुरू किया तो हिंदुस्तानियों के पास घुटना टेकने के इलावा कोई विक्लप नहीं होगा।

इसके इलावा American Companies के प्रोडक्टस की जांच भी होनी चाहिए। Many products of American/European Countries Coca-Cola,Pepsi,Colgate etc. contains poisionous substances. Their Contents should be mentioned on these products.

AMERICAN PRODUCTS खुले आम ज़हर बेच रहे हैं उनको कोई क्यों नहीं रोकता। सच्चाई तो ये है कि देश की सत्ता अब AMERICA के हाथों मे चली गई है। नेता पैसे के गुलाम हो गए हैं और देशवासी AMERICAN PRODUCTS के ।

असली जड़ तो देश के नेता हैं जिन्होंने देश को AMERICA के हाथों बेच दिया है। अब देश को तलाश है किसी लाल शास्त्री की जो इन विदेशियों को यहां से भगाए।-बहादुर-

अतह् आपसे अनुरोध है कि देश के प्रती अपनी जिम्मेदारियों को समझें ।

BE INDIAN BUY INDIAN

या

BE INDIAN BUY AMERICAN

HTTP://business.mapsofindia.com/india-company/america.html

India and U.S. have developed strong business relations with each other over the years. The United States has got great influence over Indian business. U.S. is the second largest source of FDI for India. It is also the second largest trade partner of the nation after EU. Not only that, U.S. is the largest services export destination for India as well. In fact, American companies in India form the major part of the foreign companies operating in this country. The biggest reason is the high potential of Indian market and economy. Along with China, India is the only fast-growing country that can make a difference to majority of the companies' bottom lines. One can learn from a simple statistics the reason why American companies are coming down to India. The gross domestic product of U.S. is expected to come down by 0.8% in 2009. On the other hand it is expected that India will grow at 6.6%.

Besides, established big brands have already impregnated the U.S. and European markets. But, the Indian market still offers a lot of scopes and spaces for those to grow.

India is also a large depository of skilled yet cheap labor. Hence, it becomes easy for the American companies to optimize their productions in India.
The American companies in India started their dream runs during 1990 when they reaped huge profits. The companies have seen double digit year-on-year growth in various sectors like Technology, Colas, Agriculture, Automobiles, Equipments, Finance and Banking. According to the American Chamber of Commerce in India, their membership base has soared up from zero in 1992 to more than 300 till date. However, the major success in terms of investment and growth came in technology sector. Many of the top IT companies in India are American. In fact, out of the top 20 IT companies operating in India, 9 are from the U.S. These American companies in India account for about 37% of the turnover of the top 20 firms operating in India.

However the growth of the American companies in India is not limited to IT or manufacturing only. India has a vast market of agriculture, which employs almost 70% of the population either directly or indirectly. 'Monsanto', an agro-chemical giant, is currently working on GM modified crops and fertilizers. It has also done well in forging sector also. The American retail giant 'Wal-Mart' has gone into collaboration with Bharti enterprise in the Indian retail sector.
There are a number of American companies in India which have been doing business successfully over the years. Following are some of the popular American companies in India:

• Agilent • Agro Tech • American Express • Amway • Avaya • Caltex • Caterpillar • CB Richard Ellis • Cisco • Citigroup • Coca Cola • Cognizant • Colgate Palmolive • CSC • Cummins • Discovery • Dupont • EDS • Eli Lilly • Emerson Electric • EXL • Federal Express • Ford • Franklin TempletonGE • General Motors	• Gillette • Honeywell India I • BM • Intel • Johnson & Johnson • JPMorgan • Kellogg India • Kimberly Clark • Kodak • McDonalds • Metlife India • Microsoft • Morgan Stanley • New York Life • Ogilvy and Mather • Oracle • Pepsico • Pfizer • Pizza Hut • Sun Microsystems • Texas • Tecumseh • Timex • Tyco • UPS India • Visteon • Whirlpool • Xerox Modicorp

इस बदहाली के लिए ज़िम्मेदार कौन है

आप जब इन लाइनों को पढ़ रहे होंगे तो मैं नहीं कह सकता कि रुपये की अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में या डॉलर के मुक़ाबले क़ीमत क्या होगी. रुपया लगातार गिरता जा रहा है. अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसियों ने न केवल बैंकों की, बल्कि सभी वित्तीय संस्थाओं की रेटिंग घटा दी है. कुछ एजेंसियों ने तो हमारे देश की ही रेटिंग घटा दी है. हमारे देश के कुछ महत्वपूर्ण उद्योगपतियों का कहना है कि यह देश बिना नेतृत्व के चल रहा है. बिना नेतृत्व के चल रहे देश का आधार लेकर ही शायद एजेंसियों ने हमारी रेटिंग घटा दी. देश की आर्थिक दुर्दशा का ज़िम्मेदार आखिर कौन है. यह सवाल राजनीतिक बहस का है, लेकिन देश की राजनीतिक पार्टियां इस बहस से बच रही हैं. इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो उन्हें इस विषय की गंभीरता का एहसास नहीं है या वे खुद उन्हीं नीतियों में विश्वास करती हैं, जिनके कारण देश का यह हाल हुआ है. विपक्षी गठबंधन के एक सांसद ने तो खुलेआम कह दिया कि कोई भी वित्त मंत्री होता तो देश का यही हाल होने वाला था. क्यों होने वाला था, यह उन्होंने

नहीं बताया. इसका एक मतलब यही निकाला जा सकता है कि सारे दलों के पास एक ही तरह की आर्थिक नीतियों का मसौदा है, एक ही तरह का रोडमैप है और वे उसी पर चलना चाहते हैं.

क्या देश में ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो ऐसी नीतियां बना सकें, ताकि भूख, बीमारी, कुपोषण एवं ग़ैर बराबरी से लोगों को थोड़ी राहत मिल सके? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो रोजगार के साधन बढ़ा सकें, जो विकास के पहिए को सही दिशा में सही जगह ले जा सकें? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो दुनिया में हिंदुस्तान के काले होते चेहरे को और काला होने से रोक सकें? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो हिंदुस्तान के उद्योगपतियों को, बड़े पैसे वालों को बता सकें कि उन्हें अपना इंवेस्टमेंट प्लान बदलना चाहिए.

जब 1992 में तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने संसद में देश के आर्थिक विकास का मसौदा पेश किया था तो उन्होंने बड़े गर्व से कहा था कि देश अगले बीस सालों में बहुत सारी समस्याओं पर क़ाबू पा लेगा, बिजली सर्वसुलभ हो जाएगी, क़ीमतें क़ाबू में आ जाएंगी, उत्पादन बढ़ जाएगा और देश खुशहाली के साथ विश्व की आर्थिक शक्ति के बनने की तऱफ चल पड़ेगा. संसद में कई लोगों ने उनके इस वक्तव्य का विरोध किया था और मुझे याद है, भूतपूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने सवाल खड़ा करते हुए कहा था कि जितनी चीज़ें मनमोहन सिंह कह रहे हैं, उनमें से कुछ भी अगले बीस सालों में इस देश में नहीं होने वाली हैं. उन्होंने यह कहा था कि जितना मैं इस देश को जानता हूं, गांव को जानता हूं, किसानों को जानता हूं, उसके मुताबिक़ इन नीतियों से इस देश के ऊपर बहुत विपरीत असर पड़ेगा. ग़रीबी बढ़ेगी, अपराध बढ़ेगा, ग़ैर बराबरी बढ़ेगी और देश विपरीत दिशा में चलने लगेगा. तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने चंद्रशेखर जी के भाषण में हस्तक्षेप करते हुए कहा था कि चंद्रशेखर जी, मैंने आपके ही आर्थिक सलाहकार को अपना वित्त मंत्री नियुक्त किया है और मैं तो यह मानता था कि यह आपकी विचारधारा को ही आर्थिक नीतियों के नाम पर देश के सामने रख रहे हैं. चंद्रशेखर जी ने खड़े होकर नरसिम्हाराव जी से कहा कि प्रधानमंत्री जी, आपको चाक़ू सब्ज़ी छीलने के लिए दिया था, सब्ज़ी काटने के लिए दिया था, लेकिन आप तो उस चाक़ू से दिल का ऑपरेशन करने लगे. चंद्रशेखर जी का यह बहुत गंभीर ऑब्जर्वेशन मनमोहन सिंह और नरसिम्हाराव जी की पूरी आर्थिक नीतियों पर था. आज हमारे देश के विकास की गति शून्य हो गई है, जीडीपी नीचे चली गई है, शेयर बाज़ार का बुलबुला फट गया है और मनमोहन सिंह के वित्त मंत्री रहते और अब प्रधानमंत्री रहते 200 से अधिक ज़िले नक्सलवाद की चपेट में हैं. ये ऐसे ज़िले हैं, जहां विकास नहीं हुआ. जहां रोज़ी-रोटी के साधन उपलब्ध नहीं हैं. जहां आम लोग रहते हैं. वे लोग, जो अपने वोट से सांसदों को चुनते हैं यानी अपने वोट से लोकतंत्र को बनाए रखते हैं. इन ज़िलों में बहुत बड़ी ताक़त बंदूक लेकर आर्थिक नीतियों का विरोध कर रही है और जिनके हाथ में बंदूक़ नहीं है, वे इन ताक़तों को खाना, पीना एवं रहना उपलब्ध करा रहे हैं. दूसरे शब्दों में उन्हें पूरा समर्थन दे रहे हैं.

क्या अब व़क्त नहीं आ गया है कि सारे राजनेताओं और खासकर उन उद्योगपतियों, जिन्हें अपने देश की अस्मिता, धरोहर और परंपराओं के ऊपर गर्व है, को तत्काल बैठकर इस स्थिति के बारे में सोचना चाहिए. 20 साल में आखिर ऐसा क्या हो गया कि हमारा देश आर्थिक विकास की जगह आर्थिक विनाश के मुहाने पर जाकर खड़ा हो गया. किसी ने सरकार को नहीं रोका, न नरसिम्हाराव की सरकार को और न भारतीय जनता पार्टी की सरकार को. भारतीय जनता पार्टी सात साल सत्ता में रही. अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री रहे और उन्होंने उन्हीं आर्थिक नीतियों को लागू किया, जिनका आरंभ नरसिम्हाराव, मनमोहन सिंह की सरकार ने किया था. उसके बाद फिर कांग्रेस की सरकार आ गई और कांग्रेस ने उन आर्थिक सुधारों को और तेज़ी से बढ़ाया, लेकिन देश 1991 की स्थिति से भी पीछे की ओर जा रहा है, ऐसा सा़फ दिखाई दे रहा है.

सवाल यह है कि क्या सारे अर्थशास्त्री या अर्थ विशेषज्ञ देश बनाने या देश के आर्थिक विकास की योजना बनाने के नाम पर देश के साथ मखौल करते रहे. क्या यह देश अर्थशास्त्रियों के दिमाग़ी फितूर का शिकार हो गया है? क्या इस देश का किसान, मज़दूर, दलित, नौजवान एवं अल्पसंख्यक उन अर्थशास्त्रियों की वजह से अपने जीवनयापन के साधन खोने लगा है, जिन्हें देश के खेतों, खलिहानों, किसानों, मज़दूरों, नौजवानों और ग़रीबों की कोई चिंता नहीं है? ऐसे अर्थशास्त्रियों के नेता प्रणब मुखर्जी हैं और प्रणब मुखर्जी के नेता प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह हैं, जिन्हें देश का और दुनिया का बड़ा अर्थशास्त्री माना जाता है. पर हम कैसे मानें? हमारे देश में तो इस अर्थशास्त्र ने हर जगह परेशानियां पैदा की हैं, समस्याएं पैदा की हैं और क़ीमतें बढ़ाई हैं. क़ीमतें भी ऐसी-वैसी नहीं, दस साल की तुलना तो की ही नहीं जा सकती. स़िर्फ छह-छह महीने की तुलना की जा सकती है. छह महीने पहले क़ीमतें क्या थीं, आज क़ीमतें क्या हैं? छह महीने पहले विकास की दर क्या थी, आज क्या है? छह महीने पहले मुद्रास्फीति की दर क्या थी, आज क्या है? हमारा देश एक भंवर जाल में फंस गया है. खतरे का एहसास न राजनेताओं को है और न अर्थशास्त्रियों को. यह खतरा हिंदुस्तान की अर्थ व्यवस्था पर नहीं मंडरा रहा है, बल्कि लोकतंत्र पर मंडरा रहा है.

वे अर्थशास्त्री कहां हैं, जिनके पास आज के आर्थिक विकास के मॉडल का अल्टरनेटिव है? क्या देश में ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो ऐसी नीतियां बना सकें, ताकि भूख, बीमारी, कुपोषण एवं ग़ैर बराबरी से लोगों को थोड़ी राहत मिल सके? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो ऱोजगार के साधन बढ़ा सकें, जो विकास के पहिए को सही दिशा में सही जगह ले जा सकें? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो दुनिया में हिंदुस्तान के काले होते चेहरे को और काला होने से रोक सकें? क्या ऐसे अर्थशास्त्री हैं, जो

हिंदुस्तान के उद्योगपतियों को, बड़े पैसे वालों को बता सकें कि उन्हें अपना इंवेस्टमेंट प्लान बदलना चाहिए. अगर ऐसे अर्थशास्त्री हैं, तो यही व़क्त है कि वे सामने आएं. अगर वे सामने नहीं आते हैं, खामोश रहते हैं और अपने घरों में बैठकर आज की दुर्दशा की आलोचना करते हैं तो वे भी इस स्थिति के लिए उतने ही ज़िम्मेदार हैं, जितने ज़िम्मेदार वे अर्थशास्त्री हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से हिंदुस्तान को बर्बादी की तऱफ ढकेल रहे हैं. अब व़क्त खामोश रहने का नहीं है. देश के प्रति लगाव और दुनिया में देश की इज़्ज़त बचाने की ख्वाहिश रखने वाले अर्थशास्त्री एवं उद्योगपति और अगर कुछ राजनेता इस विचार के बचे हैं तो वे भी, इन सबसे हम अपील करते हैं कि फौरन एक अल्टरनेटिव प्लान सरकार के सामने, विपक्ष के सामने और सबसे बढ़कर देश की जनता के सामने रखें, ताकि हम कम से कम इतना विश्वास कर सकें कि हम अंधेरी खाई में गिरने से अब भी बच सकते हैं, देश में लोकतंत्र अब भी बना रह सकता है. लोकतंत्र के लिए बहुत ज़्यादा ज़रूरी है कि ऐसे लोग तत्काल सामने आएं.

शीत युद्ध का बढ़ता खतरा:-

सोवियत संघ के विघटन के बाद माना जाने लगा कि शीत युद्ध ख़त्म हो गया है. ऐसा इसलिए , क्योंकि सोवियत संघ के विघटन के बाद साम्यवादी खेमा कमज़ोर हो गया था. रूस सामरिक तौर पर तो मज़बूत था , लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह वैश्विक स्तर पर साम्यवाद के प्रसार के लिए मुहिम छेड़ सके. विश्व एकध्रुवीय हो गया था , जिसके केंद्र में अमेरिका ही था. लेकिन महज़ बीस साल बाद ही एक बार फिर शीत युद्ध का ख़तरा मंडराने लगा है. वैश्विक स्तर पर ऐसा परिदृश्य बन रहा है , लेकिन इस बार साम्यवाद का प्रतिनिधित्व रूस नहीं , बल्कि चीन कर रहा है. एक दूसरा अंतर यह भी है कि इस बार साम्यवाद और पूंजीवाद के बीच टक्कर नहीं है, बल्कि अमेरिका यूरोप एवं कुछ अन्य देशों के सहयोग से अपना वर्चस्व बचाए रखने की कोशिश कर रहा है. दूसरी ओर चीन अपना वर्चस्व क़ायम करने के लिए गुटबंदी कर रहा है , जिसके लिए वह अमेरिका द्वारा उठाए गए क़दमों का विरोध करके अपने समर्थकों की संख्या बढ़ा रहा है.

अमेरिका यह प्रस्ताव चीन का प्रभाव कम करने के लिए लाया था. इसके अलावा भी कई आर्थिक मुद्दों पर दोनों देशों के बीच तनातनी है, जिससे साफ होता है कि दोनों देश आर्थिक महाशक्ति बनने के लिए एक-दूसरे को पीछे छोड़ना चाहते हैं.

इस व़क्त अमेरिका और चीन कई मुद्दों पर आमने-सामने खड़े हैं. न केवल आर्थिक मुद्दों पर , बल्कि सामरिक तौर पर भी दोनों देश एक-दूसरे को पीछे छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं. अमेरिका ने चीन की आर्थिक नीति की जमकर आलोचना की है. उसका कहना है कि चीन जानबूझ कर अपनी मुद्रा युआन की क़ीमत कम कर रहा है, ताकि उसका निर्यात बढ़ सके. चीन अपने लाभ के लिए जैसी आर्थिक नीति बना रहा है , उसे वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए सही नहीं कहा जा सकता. हालांकि चीन ने अमेरिका की नाराज़गी पर कोई कड़ी प्रतिक्रिया नहीं जताई है , लेकिन उसका तर्क है कि मुद्रा की क़ीमत धीरे-धीरे बढ़नी चाहिए , ताकि आर्थिक संतुलन न बिगड़े और बेरोज़गारी भी न बढ़े, क्योंकि ऐसा करने से वैश्विक विकास प्रभावित होगा. यही नहीं, यूरोप की मंदी से चीन के व्यापारियों को परेशानी तो है, लेकिन चीन की सरकार इस बात से ख़ुश है कि यूरोप और अमेरिका इससे आर्थिक तौर पर कमज़ोर होंगे.

एपेक की बैठक में भी दोनों देशों के बीच विवाद हुआ. एपेक देशों के बीच मुक्त व्यापार संबंधी अमेरिकी प्रस्ताव से चीन असंतुष्ट है. उसका कहना है कि अमेरिका उसे अपने अनुसार चलाने की कोशिश कर रहा है. अमेरिका यह प्रस्ताव चीन का प्रभाव कम करने के लिए लाया था. इसके अलावा भी कई आर्थिक मुद्दों पर दोनों देशों के बीच तनातनी है, जिससे साफ होता है कि दोनों देश आर्थिक महाशक्ति बनने के लिए एक-दूसरे को पीछे छोड़ना चाहते हैं. न केवल आर्थिक, बल्कि सामरिक तौर पर भी दोनों देश एक-दूसरे को मात देने की कोशिश में लगे हैं. अमेरिका ने आस्ट्रेलिया के साथ नौसैनिक समझौता किया है, जिसके तहत 2500 अमेरिकी पोत ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी तट पर तैनात किए जाएंगे. चीन ने प्रशांत महासागर में प्रभाव बढ़ाने के इस अमेरिकी प्रयास का विरोध किया है. चीन यह कभी नहीं चाहेगा कि उसके पास के क्षेत्रों में अमेरिकी नौसेना मौजूद रहे.

ऑस्ट्रेलिया ने भी भारत को यूरेनियम देने की बात मान ली है. हालांकि उसके देश में ही इसका विरोध हुआ है, जबकि अमेरिका ने ऑस्ट्रेलिया के इस क़दम का स्वागत किया है. एक तरह से अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के बीच इस समझौते से भारत को कोई दिक्कत नहीं है , क्योंकि चीन से भारत को भी परेशानी है. अमेरिका ताइवान का समर्थन करता रहा है. उसने हाल-फिलहाल 4 बिलियन पाउंड के हथियार ताइवान को बेचे हैं , जिसका चीन ने जमकर विरोध किया. चीन भी गुटबंदी का कोई मौक़ा नहीं छोड़ रहा है. जब अमेरिका ने

पाकिस्तान को हक्कानी नेटवर्क से संबंध रखने के कारण धमकी दी तो चीन के उप प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान का दौरा किया और किसी भी स्थिति में उसका साथ देने की बात कही.

हाल में नाटो सेना ने पाकिस्तानी क्षेत्र पर हमला किया, जिसमें 25 सैनिक मारे गए तो चीन ने उसे पाकिस्तान की संप्रभुता पर हमला बताया और पाक के साथ अपने संबंध मज़बूत करने की कोशिश की. ईरान के मुद्दे पर भी चीन ने अमेरिकी प्रतिबंधों का विरोध किया है. उसने तर्क दिया कि ऐसे प्रतिबंधों से ईरान अलग-थलग पड़ जाएगा, लेकिन बात कुछ और है. यही नहीं, उसने लीबिया और सीरिया को भी गुपचुप तरीक़े से समर्थन दिया. यह भी उसकी कूटनीति का हिस्सा है. देखा जाए तो संयुक्त राष्ट्र संघ हो या आसियान , दक्षेस हो या कोई अन्य क्षेत्रीय संगठन, हर जगह पर चीन और अमेरिका आमने-सामने होते हैं. बात अगर चीन और अमेरिका के बीच की होती तो यह कोई गंभीर मुद्दा नहीं था , क्योंकि कोई भी देश हो, वह आगे बढ़ने के लिए अपने प्रतिद्वंद्वी को नीचा दिखाना चाहेगा. अभी चीन और अमेरिका सबसे बड़ी आर्थिक शक्तियां हैं. सामरिक तौर पर भी चीन किसी रूप में अमेरिका से कम नहीं है , लेकिन बात है गुटबंदी की. दोनों देश विश्व को दो गुटों में बांटने की कोशिश कर रहे हैं. अमेरिका अपने समर्थकों की सूची बढ़ा रहा है और चीन अपने समर्थकों की. यही स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पैदा हुई थी और पूरी दुनिया चालीस सालों तक युद्ध के ख़ौफ के साए में रही. चूंकि दोनों गुट परमाणु शक्ति संपन्न थे , इसलिए युद्ध नहीं हुआ , लेकिन डर तो बना ही रहा. इस गुटबंदी का असर अल्प विकसित और अविकसित देशों पर पड़ा , क्योंकि उन्हें किसी एक का सहयोग ही मिल पाया. हथियार हासिल करने की होड़ मच गई, जिससे विकास का पैसा हथियारों पर ख़र्च होने लगा. अगर वही स्थिति फिर आती है तो उसका खामियाजा विकासशील और अल्प विकसित देशों को ही भुगतना पड़ेगा. ऐसे में एक बार फिर गुट निरपेक्ष आंदोलन को मज़बूत करने की ज़रूरत है, ताकि शीत युद्ध के ख़तरे से दुनिया को बचाया जा सके

विदेशी पूंजी निवेश

विदेशी पूंजी निवेश के बारे में पिछली बार सरकार ने फैसला ले लिया था, लेकिन संसद के अंदर यूपीए के सहयोगियों ने ही ऐसा विरोध किया कि सरकार को पीछे हटना पड़ा. खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश का विरोध करने वालों में ममता बनर्जी सबसे आगे रहीं. सरकार ने कमाल कर दिया. भारत दौरे पर आई अमेरिका की विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ममता से मिलने सीधे कोलकाता पहुंच गईं. खबर आई कि उन्होंने ममता बनर्जी से यह गुज़ारिश की कि विदेशी पूंजी निवेश को खुदरा बाज़ार में लाने के प्रयासों में वह सरकार की मदद करें. ऐसा शायद पहले कभी नहीं हुआ था कि भारत की राजनीति में अमेरिका इस तरह से सीधे हस्तक्षेप करे. एक तरफ़ पिछले कुछ वर्षों से सरकार न तो महंगाई पर क़ाबू पा सकी और न आर्थिक विकास का कोई रोडमैप तैयार कर सकी. पिछले आठ वर्षों में सरकार ने ऐसा कमाल किया है कि देश में आज ऐसा कोई भी वर्ग नहीं है, जो खुशहाल है. जो व्यक्ति जहां है, जिस किसी भी व्यवसाय से जुड़ा है, परेशान है. सरकार में शामिल बड़े-बड़े अर्थशास्त्री इसी बात को लेकर अड़े हैं कि इन सब समस्याओं का निदान सिर्फ़ और सिर्फ़ विदेशी निवेश ही है. विदेशी निवेश के मुद्दे पर सरकार झटपट फैसले लेकर विदेशी पूंजीपतियों और निवेशकों को एक सकारात्मक संदेश देना चाहती है. मीडिया में भी जमकर इस बात का प्रचार किया जा रहा है कि निवेशकों में भरोसा पैदा करना सरकार की पहली प्राथमिकता है. देश में एक ऐसा माहौल तैयार किया जा रहा है कि अगर खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश पर सरकार ने जल्द फैसला नहीं लिया तो अनर्थ हो जाएगा. यह बात सही है कि अर्थव्यवस्था को लेकर सरकार बैकफुट पर है, लेकिन मनमोहन सिंह के रहते स्थिति यहां तक पहुंची कैसे? आज नौबत यह है कि सरकार ऐसी अवस्था में खड़ी है, जहां एक तरफ़ गड्ढा है तो दूसरी तरफ़ खाई है.

राजनीतिक माहौल कांग्रेस के लिए ठीक नहीं है, तो कमोबेश यही हाल विपक्ष का भी है. भारतीय जनता पार्टी वैसे तो खुदरा बाज़ार में एफडीआई का विरोध कर रही है. वैसे समझने वाली बात यही है कि जब देश में एनडीए की सरकार थी, तब वह उन्हीं नीतियों को लागू कर रही थी जिसका फिलहाल वह विरोध कर रही है. स्वदेशी को अपनी विचारधारा बताने वाली पार्टी ने सरकारी उद्यमों को बेचने के लिए अलग से मंत्रालय तक खोल दिया था. विपक्षी पार्टियां एफडीआई का विरोध करेंगी, यह ऐलान हो चुका है. लेकिन मुलायम सिंह क्या करेंगे, यह एक बड़ा सवाल है. वैसे उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव ने जिस तरह से एफडीआई की पहले वकालत की, फिर बयान को पलटा. इससे दो बातें सामने आती हैं, पहली यह कि अखिलेश की एफडीआई पर कोई ठोस राय नहीं है. इस पर मुलायम सिंह यादव ने स्थिति को संभाला और जनता दल (सेक्युलर) और वाम दलों के साथ मिलकर प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिख दी कि वह खुदरा बाज़ार में विदेशी पूंजी निवेश का विरोध करेंगे. तृणमूल कांग्रेस पिछली बार की तरह इस बार भी एफडीआई का विरोध कर रही है. विरोध करने वाली पार्टियों में डीएमके भी शामिल है. इस तरह से रिटेल सेक्टर में एफडीआई लाने की नीति पर कांग्रेस सरकार अल्पमत में है.

राष्ट्रपति के चुनाव में प्रणब मुखर्जी को मिले समर्थन का अगर कांग्रेस ने ग़लत आकलन किया तो देश की राजनीति में एक नया अध्याय शुरू हो जाएगा. सरकार मॉनसून सत्र में आर्थिक सुधार के नाम पर निजीकरण तेज़ करने और खुदरा बाज़ार में विदेशी पूंजी निवेश को हरी झंडी देने की योजना बना रही है. इन नीतियों को लागू करने में प्रधानमंत्री स्वयं विशेष रुचि दिखा रहे हैं. दूसरी तरफ़ यूपीए में शामिल और बाहर से समर्थन देने वाली पार्टियां खुदरा बाज़ार में विदेशी पूंजी निवेश का विरोध कर रही हैं. विदेशी पूंजी निवेश देश की अर्थव्यवस्था और पारंपरिक खुदरा बाज़ार और उससे जुड़े लोगों के लिए विनाश लेकर आएगा. देखना यह है कि मॉनसून सत्र के दौरान इस फैसले का विरोध करने वाली पार्टियों का चरित्र कैसा रहता है? क्या ये पार्टियां आख़िरी मौक़े पर सरकार के साथ खड़ी हो जाएंगी? क्या ये पार्टियां मतदान में भाग न लेकर या वॉकआउट कर सरकार को परोक्ष रूप से समर्थन देंगी? क्या ये पार्टियां न्यूक्लियर डील की तरह नूरा कुश्ती करती हैं या फिर इस फैसले के विरोध में खड़ी होती हैं. खुदरा बाज़ार में विदेशी पूंजी निवेश एक ऐसा मामला है, जिसमें यह तय होगा कि कौन-सी राजनीतिक पार्टियां जनता के साथ खड़ी हैं और कौन-सी विदेशी और देशी पूंजीपतियों के इशारे पर जनता के साथ धोखा करती हैं. यह मुद्दा ऐसा है, जिससे न सिर्फ़ भारत की अर्थव्यवस्था में एक नया मोड़ आएगा, बल्कि यह एक राजनीतिक टर्निंग प्वाइंट साबित होगा.

सरकार ज़िद पर अड़ी है. मनमोहन सिंह ने खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश के प्रवेश के लिए एक अलग रणनीति बनाई है. उनकी रणनीति यह है कि केंद्र सरकार अपने स्तर पर फैसला ले लेगी और इसे लागू करने का काम राज्य सरकारों पर छोड़ देगी. चूंकि खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश पर कैबिनेट में फैसला हो चुका है, इसलिए फिर से यह मामला कैबिनेट में नहीं उठेगा. सरकार जल्द से जल्द किसी तरह से इस फैसले को नोटिफाई कर देना चाहती है. विदेशी निवेश आए या न आए, यह राज्यों पर छोड़ दिया जाएगा. मतलब यह कि खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश को बैकडोर से लाया जाएगा. इस रणनीति को सफल करने का दायित्व वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा को दिया गया है. आनंद शर्मा सभी मुख्यमंत्रियों को खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश को लेकर चिट्ठी लिख चुके हैं. इस मसले पर मुख्यमंत्रियों की राय ली जा रही है. मतलब यह कि राज्य सरकारों को यह छूट दे दी जाएगी कि जो राज्य खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश नहीं चाहता है, वह विदेशी कंपनियों को लाइसेंस देने से मना कर सकता है. अगर ऐसा हो जाता है तो यह मान लेना चाहिए कि जिन राज्यों में कांग्रेस की सरकार है, उन पर खुदरा बाज़ार में विदेशी कंपनियों को लाने का दबाव बन जाएगा. कांग्रेस शासित राज्यों में उन्हें प्रवेश मिल जाएगा. इस रणनीति का एक और फायदा यह है कि अगर इस मुद्दे पर विरोध होता है, तो वह राज्य सरकारों के ख़िलाफ़ होगा. केंद्र सरकार सीधे किसी बात के लिए ज़िम्मेदार नहीं होगी. ज़ाहिर है, इस तरह के फैसले को राजनीतिक फैसला नहीं कहा जा सकता है. वैसे भी इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि देश की राजनीतिक पार्टियां ग़ैर राजनीतिक फैसले ज़्यादा लेने लगी हैं. यही वजह है कि हर बड़े फैसले का विरोध सबसे पहले पार्टी के भीतर होता है. खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश को लेकर कांग्रेस में एक राय नहीं है. जो लोग भारत की राजनीति की नब्ज़ को पहचानते हैं, उन्हें पता है खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश का मतलब मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के बड़े हिस्से के वोटों से हाथ धोना है.

खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश का मामला निर्णायक इसलिए साबित हो सकता है, क्योंकि 2014 के लोकसभा चुनाव की तैयारी शुरू हो गई है. कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी का प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार कौन होगा, इसके लिए इन संगठनों में रणनीति बन रही है. वैसे सच्चाई यह है कि देश में दोनों ही पार्टियों की साख खत्म हो गई है. एक पार्टी देश में मची आर्थिक और सामाजिक तबाही के लिए ज़िम्मेदार है, तो दूसरी पार्टी पर चुप्पी साधने, कमज़ोर और ग़ैर ज़िम्मेदार विपक्ष होने का आरोप है. लोगों की समस्याओं से निपटना तो दूर, दोनों ही पार्टियों में एक भी ऐसा नेता नज़र नहीं आता, जो जनता को झूठे सपने या झूठा भरोसा दिला सके. दूसरी तरफ़ अन्ना हजारे और बाबा रामदेव आंदोलन कर रहे हैं और साथ ही 2014 के चुनाव में द़खल देने की चेतावनी भी दे रहे हैं. सरकारी तंत्र के संपूर्ण विफल होने और महंगाई की मार से अधमरी जनता बदलाव चाहती है. कालेधन और भ्रष्टाचार के मुद्दे पर कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी बैकफुट पर है. टालमटोल का रवैया ऐसा है कि लोगों को यह भी पता नहीं है कि ये दोनों पार्टियां भ्रष्टाचार को खत्म करना चाहती भी हैं या नहीं. अन्ना और रामदेव का विरोध करने वालों में नीतीश कुमार, मुलायम सिंह यादव, लालू यादव, रामविलास पासवान और मायावती जैसे नेता हैं, जो एक तरह से सरकार के लिए लठैत का काम कर रहे हैं. दूसरी तरफ़ देश की आर्थिक स्थिति बर्बादी की ओर अग्रसर है. जो भी आंकड़ा आता है, वह दिल की धड़कन बढ़ा जाता है. आंकड़ों से इतर देश के ग़रीब किसान, मज़दूर और अल्पसंख्यक सबसे ज़्यादा मुसीबत में हैं. उनके सामने अब ज़िंदगी और मौत का सवाल खड़ा हो गया है. देश के उद्योगपति सरकार पर नीतियों से संबंधित फैसले लेने का दबाव बना रहे हैं. प्रधानमंत्री ने जब से वित्त मंत्रालय का दायित्व अपने कंधे पर लिया है, तब से सरकार एक खतरनाक इशारे दे रही है. यूपीए सरकार ने देश को ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहां देश की हर समस्या का एकमात्र निदान विदेशी पूंजी निवेश नज़र आता है.

खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश का मामला निर्णायक इसलिए साबित हो सकता है, क्योंकि 2014 के लोकसभा चुनाव की तैयारी शुरू हो गई है. कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी में प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार कौन होगा, इसके लिए इन संगठनों में रणनीति बन रही है. वैसे सच्चाई यह है कि देश में दोनों ही पार्टियों की साख खत्म हो गई है.

भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस की आर्थिक नीति में कोई फर्क़ नहीं है. जिन राज्यों में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है, वहां भी महंगाई पर लगाम लगाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया. मोदी के विकास मॉडल की बात होती है, वह भी देशी-विदेशी पूंजी पर ही आधारित है. भ्रष्टाचार खत्म करने की बात हो या फिर लोकपाल की, कांग्रेस और भाजपा के आचरण में कोई अंतर नहीं है. कालेधन का मामला उठाकर अचानक से भारतीय जनता पार्टी का चुप हो जाना भी आश्चर्यजनक है. दरअसल, दोनों ही पार्टियों के पास देश में सामाजिक और आर्थिक विकास का कोई रोडमैप नहीं है. दोनों ही पार्टियां बाज़ारवाद को आगे बढ़ाकर औद्योगिक घरानों को फायदा पहुंचाने की राजनीति में लिप्त हैं. वैचारिक दृष्टि से दोनों ही एक-दूसरे की सहायक पार्टियां हैं. आज देश में एक जनोन्मुखी राजनीति की ज़रूरत है, जिसमें ग़रीब किसान, मज़दूर, पिछड़े, दलित, वनवासियों और अल्पसंख्यकों के विकास की गुंजाइश हो. राजनीतिक दलों को समझना होगा कि मतदाताओं का मिज़ाज बदल रहा है. वे ज़्यादा संख्या में वोट देने निकल रहे हैं. लोग जाति और धर्म के नाम पर वोट बैंक की राजनीति को नकार रहे हैं. अब वह बीस साल पहले वाली बात नहीं रही. लोगों ने समस्याओं को समझना शुरू कर दिया है. अब वे जवाब मांगते हैं. लोग विकास चाहते हैं. रोज़गार चाहते हैं. शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं चाहते हैं. ममता बनर्जी, मुलायम सिंह यादव, नीतीश कुमार, मायावती, लालू यादव, रामविलास पासवान जैसे नेताओं के लिए यह एक अवसर भी है. ये लोग आंदोलन से जन्मे नेता हैं. सरकार का लगातार विरोध करके ही ये लोग राजनीति में आगे बढ़े हैं. आज परिदृश्य बदला हुआ है. जब अन्ना हजारे या रामदेव आंदोलन करते हैं तो यही लोग सरकार की ढाल बनकर मैदान में उतर जाते हैं. अब व़क्तकी मांग है कि इन लोगों को वाम दलों के साथ मिलकर एक विकल्प तैयार करना चाहिए. एक ऐसा गठबंधन तैयार करना चाहिए, जो भ्रष्टाचार को खत्म करने, महंगाई से निपटने, कालेधन को वापस लाने और जनता के साथ मिलकर एक पारदर्शी सरकार बनाने और सरकारी तंत्र में ज़रूरी बदलाव लाने की रूपरेखा तैयार कर सके. उन्हें व़क्तऔर जनता दोनों का साथ मिल सकता है. वैसे इतिहास बड़ा निर्दयी होता है. राष्ट्रीय राजनीति में हाशिए पर गए कई नेताओं के सामने यह एक मौक़ा है, जब वे अपने स्वार्थ और महत्वाकांक्षा को छोड़कर देश की जनता के बारे में सोचें, ताकि वे इतिहास में अपना नाम दर्ज करा सकें. वरना वे कांग्रेस और भाजपा के पिछलग्गू बने रह सकते हैं. उन्हें क्या करना है, चयन का अधिकार सिर्फ़ उनका ही है.

बहरहाल, देश को स़ाफ समझ लेना चाहिए कि प्रधानमंत्री किसी भी क़ीमत पर विदेशी पूंजी खुदरा बाज़ार में लाने वाले हैं. कांग्रेस में उनका कोई विरोध नहीं होने वाला, क्योंकि वहां सोचने समझने वालों का अकाल हो गया है. परीक्षा संसद में ग़ैर कांग्रेसी दलों की है. वे इस फैसले का छुपा साथ देते हैं या खुला साथ देते है या इस फैसला का छुपा विरोध करते हैं या खुला विरोध करते हैं. मुख्य विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी के नेता लालकृष्ण आडवाणी, सुषमा स्वराज, अरुण जेटली, जसवंत सिंह और यशवंत सिन्हा का चेहरा भी एफडीआई के सवाल पर स़ाफ हो जाएगा कि वे देश के लोगों के साथ है या विदेशी कंपनियों के साथ.

बड़ी कंपनियां किस तरह खुदरा बाज़ार को बर्बाद करती हैं

खुदरा व्यापार का मतलब है कि कोई दुकानदार किसी मंडी या थोक व्यापारी के माध्यम से माल या उत्पाद खरीदता है और फिर अंतिम उपभोक्ता को छोटी मात्रा में बेचता है. खुदरा व्यापार का मतलब है कि वैसे सामान की खरीद-बिक्री, जिन्हें हम सीधे इस्तेमाल करते हैं. रोज़मर्रा में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं या सामान को हम किराने की दुकान, कपड़े की दुकान, रेहड़ी और पटरी वालों से खरीदते हैं. यह समझना ज़रूरी है कि जब बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियां खुदरा बाज़ार में आती हैं तो क्या होता है? अब तक जो कंपनियां भारत में काम कर रही हैं, उनकी तुलना में विदेशी कंपनियां क़ाफी बड़ी हैं. सरकार कहती है कि है कि उसने 10 करोड़ डॉलर से कम के निवेश पर पाबंदी लगाई है तो वॉलमार्ट, कैरीफोर, टेस्को, स्टार वक्स, वेस्ट वाय एवं मैट्रो जैसी विदेशी कंपनियों के लिए यह रक़म कुछ भी नहीं है. भारत पर इन कंपनियों की नज़र इसलिए है, क्योंकि भारत का खुदरा व्यापार दुनिया में सबसे तेज़ी से बढ़ रहा है, साथ ही यह असंगठित और बिखरा हुआ है. इसलिए इसमें कम पूंजी लगाकर भी अरबों-खरबों की कमाई हो सकती है. सरकार कहती है कि हर निवेशक को क़रीब 50 फीसदी पूंजी का निवेश खुदरा बाज़ार से जुड़ी मूलभूत सुविधाओं पर खर्च करना होगा. सरकार इसे ऐसे बता रही है, जैसे यह कोई प्रतिबंध है या उन पर कोई दबाव है. सच्चाई यह है कि वॉलमार्ट और टेस्को जैसी कंपनियों का काम करने का तरीक़ा ही यही है कि वे अपनी सप्लाई चेन खुद बनाती हैं, लेकिन खतरा कुछ और है. दुनिया भर में जहां भी ये कंपनियां खुदरा बाज़ार में गईं, वहां रिटेल सेक्टर में रोज़गार कम हुआ और लोगों की आय में गिरावट आई. भारत में 96 फीसदी खुदरा व्यापार असंगठित और अनियोजित क्षेत्र में है, इसलिए यहां बेरोज़गारी का खतरा और भी ज़्यादा है. भारत में तो इसका व्यापक असर होने वाला है. जहां तक बात क़ीमत की है, तो वॉलमार्ट जैसी कंपनियों की यह रणनीति है कि शुरुआती दिनों में यह सामान की क़ीमत घटा देती हैं, जिसकी वजह से प्रतियोगी दुकानों और खुदरा सामान बेचने वाली दुकानों की बिक्री कम हो जाती है. दुकानदार अपनी दुकान में काम करने वाले लोगों को बाहर करने लगता है. फिर धीरे-धीरे दुकानें बंद होने लगती हैं. एक बार इन कंपनियों का बाज़ार पर क़ब्ज़ा हो जाता है, तब ये मनमाने तरीक़े से क़ीमतें बढ़ा देती हैं. यही पूरी दुनिया में हो रहा है.

जहां-जहां बहुराष्ट्रीय कंपनियां खुदरा बाज़ार में गईं, वहां दस साल के अंदर खुदरा दुकानों की संख्या आधी रह गई. भारत में इसका असर पहले साल से ही दिखने लगेगा. एक अनुमान के मुताबिक़, एक करोड़ लोगों को रोज़गार से हाथ धोना पड़ सकता है. मतलब यह कि बड़े-बड़े सुपर मार्केट बनने से नए अवसर तो पैदा होंगे, लेकिन इन कंपनियों की वजह से बेरोज़गार होने वालों की संख्या रोज़गार पाने वालों की संख्या से बहुत ज़्यादा होगी. भारत में रोज़गार एवं जीविका प्रदान करने के मामले में खुदरा व्यापार कृषि के बाद दूसरे स्थान पर है, लेकिन इसमें विदेशी निवेश आने से बेरोज़गारी बढ़ेगी. अब तक जो लोग खुदरा बाज़ार से जुड़े हैं, उन्हें अपनी दुकानें बंद करनी होंगी. इसका असर सप्लाई चेन पर पड़ने वाला है. सप्लाई चेन का मतलब खेतों से बाज़ार तक सामान पहुंचाने के तरीक़े और सिलसिले से है. किसान खेतों में अनाज या कच्चा माल पैदा करते हैं, जो कई हाथों से गुज़रता हुआ बाज़ार पहुंचता है. इस पूरी प्रक्रिया में करोड़ों लोग जुटे हैं. बड़ी-बड़ी कंपनियां सीधे खेतों या उत्पादक से सामान उठाती हैं, खुद उनकी प्रोसेसिंग करती हैं और फिर बेचती हैं. इससे इन कंपनियों को दो फायदे होते हैं. पहला यह कि ये बड़ी कंपनियां बाज़ार से दूसरे प्रतियोगियों को भगा देती हैं, दूसरा यह कि सप्लाई चेन बर्बाद हो जाती है, उत्पादक और किसान इन कंपनियों पर आश्रित हो जाते हैं. सरकार कहती है कि खुदरा बाज़ार में विदेशी निवेश आने से प्रतियोगिता बढ़ेगी. लेकिन सच्चाई यह है कि विदेशी कंपनियों के आने से प्रतियोगिता ही खत्म हो जाएगी. ये कंपनियां इतनी बड़ी हैं कि इनसे किसी की प्रतियोगिता हो ही नहीं सकती. खुदरा बाज़ार में विदेशी कंपनियों के प्रवेश से इस क्षेत्र में एकाधिकार की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ेगी.

दरअसल, होता यह है कि शुरुआती दौर में ये कंपनियां पुराने बाज़ार और सप्लाई चेन को नष्ट करने के लिए क़ीमतें कम करती हैं और जब इस क्षेत्र पर इनका एकाधिकार हो जाता है, तब ये सामान के मनमाने दाम वसूलती हैं. सरकार कहती है कि इससे किसानों को फायदा होगा, उन्हें उनके उत्पाद की ज़्यादा क़ीमत मिलेगी. किसानों का अनाज-उत्पाद सड़ जाता है, बर्बाद हो जाता है, इससे उन्हें निजात मिल जाएगी. सवाल है कि अगर यह सच्चाई है तो इसका इलाज क्या है? क्या सरकार का यह फर्ज़ नहीं बनता है कि वह देश में कोल्ड स्टोरेज की चेन बनाए, अनाज के रखरखाव के लिए गोदाम बनाए, या फिर हमें यह मान लेना चाहिए कि देश की सरकार इतनी कमज़ोर है कि अनाज भंडारण और गोदाम बनाने के लिए भी उसे विदेशी निवेश की ज़रूरत पड़ती है. जहां तक बात किसानों को ज़्यादा क़ीमत मिलने की है, तो यह भी एक मिथ्या है. इन बड़ी-बड़ी कंपनियों को चलाने वाले लोग बहुत चालाक होते हैं. वे आम किसानों से सामान नहीं खरीदते, बल्कि ब़डे किसानों से कॉन्ट्रेक्ट फार्मिंग कराते हैं. पहले वे किसानों से अपना सीधा रिश्ता बनाते हैं, उन्हीं चीज़ों के उत्पादन पर ज़ोर देते हैं, जिनकी इन रिटेल कंपनियों के स्टोरों में खपत होती है. इस तरह से किसान पूरी तरह इनके चंगुल में फंस जाते हैं.

<u>सीरिया बशर वास्तविकता को स्वीकार करें :</u>

(But What are the reasons of Economic Recession in Syria ?)

सीरिया में मार्च 2011 से राष्ट्रपति बशर अल असद के विरुद्ध आंदोलन चल रहे हैं. संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार , सरकार विरोधी विद्रोह को दबाने के लिए की गई कार्रवाई में अब तक पांच हज़ार लोग मारे जा चुके हैं. हालांकि सीरिया इस आंकड़े को ग़लत बताता है , लेकिन दो हज़ार लोगों के मरने की पुष्टि तो वह भी कर रहा है. अंतरराष्ट्रीय मीडिया पर प्रतिबंध लगाए जाने के कारण वहां की सारी खबरें नहीं आ पाती हैं, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सीरिया की हालत दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है. अरब में 2011 क्रांति का साल रहा है. ट्यूनीशिया, लीबिया, यमन और मिस्र इस क्रांति के गवाह रहे हैं. इन देशों में जिस तरह राजनीतिक सुधार के लिए लोगों ने सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया था , सीरिया की स्थिति उससे अलग नहीं है. सीरिया में भी सत्तर के दशक से एक ही परिवार का शासन है. 1971 में वर्तमान राष्ट्रपति के पिता हाफिज़ अल असद यहां के राष्ट्रपति बने थे. इससे पहले यानी 1963 से सीरिया में आपातकाल लागू है. हाफिज़ अल असद के समय 1973 में सीरिया को धर्म निरपेक्ष समाजवादी राज्य घोषित किया गया था, जिसमें इस्लाम को बहुसंख्यक लोगों का धर्म बनाया गया था. हाफिज़ अल असद की मृत्यु वर्ष 2000 में हुई. उसके बाद यहां के संविधान में संशोधन करके राष्ट्रपति बनने की न्यूनतम आयु 40 साल से घटाकर 34 साल कर दी गई थी. इस संशोधन का उद्देश्य हाफिज़ अल असद के पुत्र बशर अल असद को सीरिया का राष्ट्रपति बनाना था. हालांकि बशर को राष्ट्रपति बनाने के लिए जनमत संग्रह का सहारा लिया गया था , जिसमें उन्हें 97.29 फीसदी मत मिलने की बात कही गई थी , लेकिन यह जनमत संग्रह किस तरह कराया गया था , यह बताने की आवश्यकता नहीं है. जिस देश में किसी एक व्यक्ति को फायदा पहुंचाने के लिए संविधान में संशोधन किया जा सकता है , वहां जनमत संग्रह कराया जाना केवल दिखावा ही कहा जा सकता है. इसी वंशवादी परंपरा के विरुद्ध सीरिया के लोगों में आक्रोश है. यह आक्रोश न केवल आम लोगों , बल्कि वकीलों, पत्रकारों, बाथ पार्टी से इतर नेताओं एवं

लेखकों में भी है, लेकिन अभी तक यहां सेना का पलड़ा भारी है, जिसके चलते सरकार विरोधी क्रांति सफल नहीं हो पा रही है. सीरिया में चल रहे आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने जिस तरह हिंसक कार्रवाइयां की हैं , उनके चलते अरब लीग इससे अलग हो गया था. इसे अरब लीग की सदस्यता से भी वंचित किया गया , लेकिन बाद में बातचीत द्वारा इस गतिरोध को दूर करने के लिए अरब लीग ने एक प्रेक्षक दल नियुक्ति किया. सीरिया और अरब लीग ने इस संकट के समाधान के लिए एक परियोजना तैयार की , जिसमें देश में सैन्य कार्रवाइयों को तुरंत रोका जाना, नगरों एवं बस्तियों से सेना को वापस बुलाना और सीरिया की जेलों में बंद राजनीतिक क़ैदियों को रिहा किया जाना शामिल था.

औपचारिक तौर पर बशर अल असद ने इस परियोजना की सारी बातें मान लीं और लगभग तीन हज़ार राजनीतिक बंदियों को रिहा भी कर दिया, लेकिन सेना हटाने और सैन्य कार्रवाई रोकने वाले प्रावधान अमल में नहीं लाए गए. अभी भी यहां हिंसक कार्रवाइयां जारी हैं. इसलिए अरब लीग ने प्रेक्षक दल निलंबित कर दिया है. कार्यकर्ताओं का कहना है कि दो दिनों की हिंसक कार्रवाई में 135 लोगों की मौत हो चुकी है. अरब लीग के महासचिव नबील अल अरबी का कहना है कि यह फैसला किया गया है कि सीरिया में अरब लीग का मिशन उस वक़्त तक रोक दिया जाए, जब तक वहां हो रही हिंसा का मामला लीग के सामने नहीं रखा जाता. हालांकि ऐसी उम्मीद है कि इस प्रेक्षक दल का समय और बढ़ाया जाएगा. कई देशों ने अपने प्रेक्षकों को वापस बुला लिया है, लेकिन रूस के विदेश मंत्री सर्गेय लेवरोव ने कहा है कि प्रेक्षकों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए. उनका कहना है कि आख़िरकार इतने महत्वपूर्ण मिशन के साथ इस तरह का रवैया क्यों अपनाया जा रहा है. ग़ौरतलब है कि रूस सीरिया में विदेशी हस्तक्षेप का विरोध करता है. उसने सरकार विरोधी प्रदर्शन कर रहे लोगों पर कार्रवाई के लिए सीरिया की आलोचना संबंधी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव पर वीटो कर दिया. इस प्रस्ताव पर वीटो करने वाले देशों में चीन भी शामिल था. हालांकि यूरोपीय देशों द्वारा तैयार इस प्रस्ताव में सीरिया पर सीधे तौर पर कोई प्रतिबंध लगाने की बात नहीं की गई थी, क्योंकि इन देशों को पहले से इस बात का डर था कि कहीं इस प्रस्ताव पर वीटो का प्रयोग न हो जाए, लेकिन फिर भी रूस और चीन ने प्रस्ताव पर वीटो कर दिया. चीन का कहना था कि मौजूदा हालात में प्रतिबंध या प्रतिबंध की धमकी से सीरिया की समस्या का हल नहीं हो सकेगा, बल्कि स्थिति और बिगड़ जाएगी.

अब फिर से संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सीरिया के मामले पर चर्चा की गई है. चर्चा में अरब लीग की योजना लागू करने की बात कही गई. अरब लीग का कहना है कि सीरियाई राष्ट्रपति बशर अल असद को सत्ता अपने बाद के दूसरे नंबर के नेता को सौंप देनी चाहिए, ताकि वे सीरियाई राष्ट्रीय एकता की सरकार के साथ काम कर सकें. इस चर्चा पर रूस ने कोई आपत्ति नहीं की , लेकिन उसने प्रस्ताव के कई मुद्दों पर असहमति जताई है. अमेरिका तो शुरू से विद्रोहियों के साथ रहा है. अरब लीग भी प्रस्ताव के समर्थन में बहुमत जुटाने का प्रयास कर रही है. हालांकि इस प्रस्ताव पर बहुमत के लिए आवश्यक नौ देशों की मंज़ूरी की समस्या नहीं है , लेकिन वीटो का प्रश्न अभी भी अटका हुआ है. अगर प्रस्ताव पर रूस या चीन का वीटो आता है तो यह दोबारा गिर जाएगा. दोनों देशों ने पहले भी वीटो किया है. इस बार इनकी आपत्तियां दूर करने की कोशिश की जा रही है. सुरक्षा परिषद में जो भी निर्णय हो, लेकिन जिस तरह की परिस्थितियां सीरिया में उत्पन्न हो गई हैं , उनमें तो यही कहा जा सकता है कि बशर अल असद को अरब लीग की बात मान लेनी चाहिए, ताकि विदेशी हस्तक्षेप की आवश्यकता ही न पड़े. अगर नाटो ने कोई कार्रवाई की तो सीरिया और बशर दोनों के लिए अच्छा नहीं होगा. बशर को राजनीतिक सुधार के लिए तैयार हो जाना चाहिए. यह बात अलग है कि उसके बाद होने वाले चुनाव में बशर फिर से चुनाव जीतकर आते हैं या उन्हें विपक्ष में बैठना पड़ता है. अगर उन्हें ख़ौफ है तो वह पहले ही इस बात की गारंटी ले सकते हैं कि विद्रोह के समय उठाए गए क़दमों के लिए उन पर मुक़दमा नहीं चलाया जाएगा. बातचीत और समझौते के ज़रिए समस्या का समाधान हो जाए, यही सीरिया के हित में है, वरना इस खूनी खेल का अंजाम बहुत भयानक हो सकता है.

बिगड़े रिश्ते, बिगड़ी अर्थव्य वस्था(राजनीति और अर्थव्यवस्था में फर्क)

अब प्रणब मुखर्जी के दूसरे मंत्रियों और प्रधानमंत्री से रिश्ते की बात करें. वित्त मंत्री माना जाता है कि आम तौर पर कैबिनेट में दूसरे नंबर की पोजीशन रखता है. वित्त मंत्रालय इन दिनों मुख्य मंत्रालय (की मिनिस्ट्री) हो गया है, क्येंकि हर पहलू का महत्वपूर्ण पहलू वित्त होता है, इसलिए बिना वित्त के क्लीयरेंस के कोई भी फैसला हो ही नहीं सकता. एक तरह से देखें तो प्रधानमंत्री से ज़्यादा महत्वपूर्ण वित्त मंत्रालय का काम है. यह माना जाता है कि अर्थशास्त्री होने के कारण मनमोहन सिंह को आर्थिक मामले की विशेषज्ञता हासिल है, लेकिन प्रणब मुखर्जी ने प्रधानमंत्री से किसी भी विषय के ऊपर , विशेषकर आर्थिक विषयों के ऊपर संपर्क नहीं किया , क्योंकि उनका मानना है कि वह न केवल विशेषज्ञ हैं, बल्कि सारे मसलों को ठीक करना उन्हीं की बुनियादी ज़िम्मेदारी है. दोनों के रिश्ते बहुत अजीब हैं. दोनों में सार्वजनिक रूप से तो बात होती है , लेकिन देश की किसी समस्या या आर्थिक स्थिति को लेकर प्रणब मुखर्जी वित्त मंत्री रहते हुए प्रधानमंत्री के साथ कभी बैठे हों , यह खबर न हमारे पास है और न किसी कैबिनेट मिनिस्टर के पास. मज़े की बात यह है कि वित्त मंत्रालय के अधिकारी और प्रधानमंत्री कार्यालय के अधिकारी तो आपस में बात कर लेते हैं , लेकिन प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री आपस में बात नहीं करते. जबसे प्रणब मुखर्जी वित्त मंत्री बने हैं , तबसे प्रधानमंत्री ने कोई पत्र वित्त मंत्री को लिखा हो

या वित्त मंत्री के नाते कोई पत्र प्रधानमंत्री को लिखा गया हो , खासकर उन विषयों पर, जिनका रिश्ता पॉलिसी डिसीजन से है, हमारी जानकारी में तो नहीं है.

अगर अन्ना हजारे और रामदेव का अनशन पागलपन है और अगर देश में भ्रष्टाचार नहीं है, तो क्यों काले धन पर सरकार ने कमेटी बनाई, क्यों जांच कर रही है और क्यों काले धन के कनवर्जन का प्लान बना रही है ? विदेश के बैंकों में रखे पैसे को भारत वापस लाने का प्रस्ताव क्यों संसद में स्वीकार किया गया ? क्या देश में किसी आदमी को यह बताने की ज़रूरत है या समझाने की ज़रूरत है कि काले धन का स्रोत क्या है. इसलिए बताने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हर आदमी जानता है कि काले धन का स्रोत भ्रष्टाचार है.

प्रणब मुखर्जी के वित्त मंत्री रहते हुए प्रधानमंत्री ने कभी वित्त मंत्रालय में हस्तक्षेप नहीं किया. उन्होंने सारे फैसले प्रणब मुखर्जी पर छोड़ दिए. प्रणब मुखर्जी ने भी प्रधानमंत्री से कभी सलाह नहीं मांगी. अगर दूसरे शब्दों में कहें तो इसे अहं का टकराव माना जा सकता है. प्रणब मुखर्जी ने कभी भी मनमोहन सिंह को अपने से ज़्यादा आर्थिक मामलों में ज्ञानवान या राजनीतिक मामलों में समझदार माना ही नहीं. चिदंबरम जब वित्त मंत्री थे, तो चूंकि वह मनमोहन सिंह से जूनियर थे , इसलिए उन्हें उन लोगों की सलाह भी मिल जाती थी , जो मनमोहन सिंह को भी सलाह देते थे. जैसे मोंटेक सिंह अहलूवालिया , सी रंगराजन और कौशिक बसु. ये तीनों वित्त से जुड़े मसलों में चिदंबरम को सलाह देते थे , लेकिन जब प्रणब मुखर्जी वित्त मंत्री बने और चूंकि यह मनमोहन सिंह से सीनियर थे , इसलिए इन तीनों की एंट्री वित्त मंत्रालय में एक तरह से बैन हो गई. प्रणब मुखर्जी के इस्तीफा देने से 20 दिन पहले से फिर एक नई स्थिति उभरी. प्रधानमंत्री ने सीधे आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया और हर कैबिनेट मिनिस्टर और सेक्रेटरीज को यह संदेश पहुंच गया कि उन्हें अब सी रंगराजन से मिलना है और उनकी राय लेनी है. प्रणब मुखर्जी के इस्तीफा देने के 20 दिन पहले से सी रंगराजन सारे लोगों की बैठक वित्तीय मसलों पर लेने लगे और उन्हें राय देने लगे.

भारत की वित्तीय स्थिति खराब होने या वित्त मंत्रालय के काम न करने में कहीं विजन की कमी तो नहीं थी. प्रणब मुखर्जी के इस्तीफे के पहले एक पत्रकार वार्ता में जब पूछा गया कि भारत की आर्थिक स्थिति क्यों खराब होती चली गई तो प्रणब मुखर्जी ने कहा , हां मैं जानता हूं, लेकिन यह रिवाइव होगी. जब उनसे पूछा गया कि कैसे तो उन्होंने कहा, यह मेरी गट फीलिंग है. क्या एक वित्त मंत्री एक देश को अपनी गट फीलिंग की वजह से चला रहा है या एक स्पष्ट आर्थिक नीति के ज़रिए वह फैसले ले रहा है. वित्त मंत्री ने साफ़ कहा , बिकॉज आई एम ए आप्टीमिस्टिक दैट इज व्हाई आई हैव ए आप्टिमिज्म दैट इंडियन इकोनॉमी विल रिवाइव बैक (मैं आशावादी हूं, इसलिए उम्मीद करता हूं कि भारतीय अर्थव्यवस्था पटरी पर आ जाएगी). यह मज़े की चीज़ है कि आप कुछ करिए मत, किसी को कुछ करने दीजिए मत. पॉलिसी पैरालिसिस आपके मंत्रालय में आ गया है, आप उसे रिवाइज नहीं कर रहे हैं और आप गट फीलिंग पर इकोनॉमी रिवाइव करना चाहते हैं.

हिंदुस्तान में आम आदमी अपने पैसे को सुरक्षित रखने के लिए और ज़्यादा फायदा कमाने के लिए दो रास्तों का इस्तेमाल करता है या तो वह प्रॉपर्टी में पैसे लगाता है या गोल्ड में. तीसरा ऑप्शन प्रॉविडेंट फंड है , लेकिन प्रॉविडेंट फंड उस व्यक्ति को यह गारंटी नहीं देगा कि उसका इतना पैसा बढ़ेगा या उसी अनुपात में बढ़ेगा , जितना प्रॉपर्टी या गोल्ड में बढ़ता है. अब अर्थव्यवस्था का चेहरा बदला है. अब लोग यह नहीं चाहते कि वे कहीं पैसा रखें और उन्हें एक निश्चित ब्याज़ मिल जाए. मल्टी लेयर इकोनॉमी हो गई है. जो पैसा प्रॉविडेंट फंड में आएगा, वह बाद में पूंजी बाज़ार में आएगा, फिर इंफ्रास्ट्रक्चर में चला जाएगा. एक साइकिल में पैसा घूमता है. सच्चाई यह है कि प्रॉविडेंट फंड का कोई लेजिशलेशन नहीं है. प्रॉविडेंट फंड में रिटर्न अच्छा नहीं मिलता है. इसकी जगह पर प्रॉपर्टी या गोल्ड में पैसा उतना ही सुरक्षित है, जितना कि प्रॉविडेंट फंड में, लेकिन इसमें रिटर्न बहुत ज़्यादा है. अगर 10 लाख रुपये प्रॉपर्टी या गोल्ड में लगे तो आदमी सोचता है कि वह पैसा 20 या 25 साल में 1 करोड़ रुपये हो जाएगा, लेकिन ऐसी कोई संभावना प्रॉविडेंट फंड में नहीं दिखाई दे रही है. हमें यह लगता है कि इस मल्टी लेयर चेन को समझने की जहमत वित्त मंत्री ने उठाई ही नहीं और इस मल्टी लेयर सिस्टम को जो व्यक्ति नहीं समझेगा, वह सफल वित्त मंत्री नहीं हो सकता. फुल टाइम पॉलिटीशियन एंड एक्सट्रा स्मार्ट पालिटीशियन कैन नॉट बिकम अ सक्सेसफुल फाइनेंस मिनिस्टर (पूर्णकालिक एवं अति चतुर नेता एक सफल वित्त मंत्री नहीं हो सकता). वित्त मंत्रालय की महान बुद्धिमानी का एक और उदाहरण ओएनजीसी है. पहले तय हुआ कि ओएनजीसी को शेयर मार्केट में ले जाएं और इसके शेयर बेचे जाएं. लगभग पचास करोड़ रुपये सिटी बैंक जैसे बैंकों को दिए गए कि इसके शेयर बिकवाएं. ढाई बजे खबर आई कि दो पर्सेंट शेयर भी नहीं बिके हैं, तो हड़बड़ी में वित्त मंत्रालय से फोन गया एलआईसी में और कहा गया कि वह इसके शेयर खरीदे.

ओएनजीसी के सारे शेयर एलआईसी ने खरीद लिए. वह भी एक स्कैंडल बन गया. इस छोटी चीज़ को वित्त मंत्रालय नहीं हैंडल कर पाया तो यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि देश की आर्थिक समस्याओं को हैंडिल करने में उसने क्या समझदारी दिखाई होगी.

राजनीति और अर्थव्यवस्था , दोनों में एक अंतर है. राजनीति में आप समझौते दर समझौते कर सकते हैं. कास्ट, क्रीड, जातियों को बैलेंस करने के फैसले ले सकते हैं. इसमें आज आपने इसकी मदद की , कल उसकी मदद कर दी , लेकिन अर्थव्यवस्था में आपका एक फैसला वर्ल्ड इकोनॉमी (विश्व अर्थव्यवस्था) को प्रभावित करता है या उससे प्रभावित होता है. आप अगर अपने बिजनेस मैन , अपने एंटरप्रेन्योर को अगर कंफर्ट नहीं दे सकते हैं, तो आप किसे कंफर्ट दे सकते हैं. हमारे बहुत सारे फैसलों का फायदा चीन , अफ्रीका और यूएस को हुआ है. गार (जनरल एंटी अव्याडेंस रूल्स , जीएएआर) पर टैक्स लगा दिया , लोगों ने पैसा आपके देश से निकाल लिया. क्या वह पैसा लोगों ने अपनी जेब में रखा ? नहीं, वह पैसा उन्होंने चीन, अफ्रीका या किसी और देश में निवेश कर दिया. इसका समाधान इन्होंने निकाला कि एफडीआई में पैसा बढ़ा देते हैं. एफडीआई बढ़ाने का फैसला इसलिए सही नहीं है , क्योंकि हिंदुस्तान में निवेश कम हो रहा है , यह सच नहीं है. रीटेल में एफडीआई को अनुमति देने के अलग लॉजिक (तर्क) हैं. इस तरह का फैसला ऐसा है , जैसे भारत की अर्थव्यवस्था को आप ऑक्सीजन दे रहे हों. रीटेल सेक्टर की अलग समस्याएं हैं , अलग तर्क हैं, अलग मांग है. उसके लिए एफडीआई लागू करने के पक्ष में बहस हो सकती है , विरोध में बहस हो सकती है. बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था के नाम पर एफडीआई लागू की जाए , यह ग़लत सोच है. बिल्कुल वैसी ही सोच है कि आप पूरी अर्थव्यवस्था को ऑक्सीजन दे रहे हों. अर्थव्यवस्था ऑक्सीजन से नहीं चलती. गार (जनरल एंटी अव्याडेंस रूल्स, जीएएआर) के मामले में भी वित्त मंत्रालय ने यही किया और ब्लैक मनी के मामले में भी यही किया. वित्त मंत्रालय ने बयान दिया , मनी केप्ट इन यूएस एंड एब्रॉड इंडिया इज नॉट ब्लैक मनी (यूएस और अन्य देशों में रखा पैसा काला धन नहीं है). यह वित्त मंत्रालय ने कौन सी अद्भुत बात की और कौन सी नई खोज की, मेरी समझ में नहीं आता. अगर हिंदुस्तान में रहने वाले किसी शख्स के किसी रिश्तेदार का पैसा , जो बाहर काम करता है, अगर वहां के किसी बैंक में रखा है तो वह ब्लैक मनी बिल्कुल नहीं है. इतने गंभीर विषय पर इतने हल्के या अहमकाना बयान की आखिर ज़रूरत क्या थी ? वित्त मंत्रालय ने यह बयान शायद यह सोचकर दिया है कि यह बहुत बड़ा इंटेलेक्चुएली हाई पिच का हाई फाई स्टेटमेंट है.

अन्ना हजारे और बाबा रामदेव ब्लैक मनी की बात कह रहे हैं. एक तरफ़ तो सरकार कहती है कि अन्ना हजारे और बाबा रामदेव ग़लत कह रहे हैं कि भारत में ब्लैक मनी है, दूसरी तरफ़ वह ब्लैक मनी पर कमेटी बनाती है और ब्लैक मनी के कनवर्जन का प्लान तय कर रही है. सरकार यह भी कोशिश कर रही है कि विदेश के बैंकों में जो पैसा है , वह किसी तरीक़े से आसानी से भारत वापस लाया जा सके. वह इसकी योजना बना रही है. अगर अन्ना हजारे और रामदेव का अनशन पागलपन है और अगर देश में भ्रष्टाचार नहीं है , तो क्यों काले धन पर सरकार ने कमेटी बनाई , क्यों जांच कर रही है और क्यों काले धन के कनवर्जन का प्लान बना रही है ? विदेश के बैंकों में रखे पैसे को भारत वापस लाने का प्रस्ताव क्यों संसद में स्वीकार किया गया ? क्या देश में किसी आदमी को यह बताने की ज़रूरत है या समझाने की ज़रूरत है कि काले धन का स्रोत क्या है. इसलिए बताने की ज़रूरत नहीं है , क्योंकि हर आदमी जानता है कि काले धन का स्रोत भ्रष्टाचार है. सोर्स ऑफ मनी विच इज आउटसाइड इंडिया इज करप्शन एंड सेम टाइम यू आर सेइंग देयर इज नो करप्शन इन अवर गवर्नमेंट. व्हाई अवर मिनिस्टर्स आर वर्किंग ऑन ब्लैक मनी ? (भारत से बाहर रखे पैसों का स्रोत भ्रष्टाचार है और इसी समय आप यह कहते हैं कि हमारी सरकार में भ्रष्टाचार नहीं है. फिर क्यों हमारे मंत्री काले धन पर काम कर रहे हैं).

कंट्रोवर्सीज (विवाद) के उठने के पीछे क्या प्रणब मुखर्जी साहब का बैड मैनेजमेंट नहीं है. एक मज़ेदार बात बताते हैं. वित्त मंत्रालय ने फेसबुक के ऊपर एक एकाउंट खोला. इस एकाउंट को डी के मित्तल और प्रणब मुखर्जी खुद देखते थे. उसमें एक दिन लिखा हुआ आया कि बस एक ही उल्लू काफ़ी है बर्बाद गुलिस्तां करने को, हर शाख पे उल्लू बैठा है , अंजामे-गुलिस्तां क्या होगा. उसके बाद डी के मित्तल और प्रणब मुखर्जी ने उसे देखना बंद कर दिया. वित्त मंत्रालय ने अब फेसबुक एकाउंट की टोन बदल दी. अब वहां सिर्फ़ फोटो आते हैं कि वित्त मंत्री कहां-कहां गए ।

फैसले न लेने की कीमत

मनमोहन सिंह की बुनियादी समस्या यह है कि वह खुद फैसले नहीं लेना चाहते, लेकिन प्रधानमंत्री हैं तो फैसले तो लेने ही थे. जब उनके पास फाइलें जाने लगीं तो उन्होंने सोचा कि वह क्यों फैसले लें, इसलिए उन्होंने मंत्रियों का समूह बनाना शुरू किया, जिसे जीओएम (मंत्री समूह) कहा गया. सरकार ने जितने जीओएम बनाए, उनमें दो तिहाई से ज़्यादा के अध्यक्ष उन्होंने प्रणब मुखर्जी को बनाया. प्रणब मुखर्जी, जब चिदंबरम वित्त मंत्री थे, एक ऐसे जीओएम के भी अध्यक्ष बन गए,

जिसका काम था बाक़ी सारे जीओएम से काम कराना, क्योंकि मंत्री जीओएम के लिए समय नहीं देते थे. मुझे नहीं पता कि ऐसे किसी भी जीओएम ने कोई अनुशंसा की हो, जिसके अध्यक्ष प्रणब मुखर्जी रहे हों, क्योंकि उनके पास स्वयं जीओएम की बैठकों को किसी तार्किक अंत तक ले जाने का समय नहीं था. प्रणब मुखर्जी के अपने मंत्रालय में कितने हल्के ढंग से विचार होता था और जिसके ऊपर समय देना प्रणब मुखर्जी मुनासिब नहीं समझते थे, उसका एक उदाहरण मुद्रास्फीति है. प्रणब मुखर्जी का मानना था कि इन्फ्लेशन इज़ ए सिस्टमेटिक अप्रोच. इट्स ए बास्केट ऑफ गुड्स. उन्होंने कभी मुद्रास्फीति पर हमला नहीं किया, व्यवस्था पर हमला किया. वित्त मंत्रालय यह समझ नहीं पाया कि मुद्रा आपूर्ति ज़्यादा होने से मुद्रास्फीति बढ़ी है या फिर वस्तुओं की कमी की वजह से. हक़ीक़त यह थी कि औद्योगिक विकास कम हो रहा था. भारत के अपने औद्योगिक विकास की दर नीचे जा रही थी. आवश्यक वस्तुओं की कमी हो रही थी, जिसकी वजह से मुद्रास्फीति बढ़ी. सरकार अपनी महान बुद्धिमानी से महंगाई कैसे बढ़ाती है, इसका उदाहरण है आयरन ओर (लौह अयस्क) और स्टील. हमारा आयरन ओर ज़्यादा से ज़्यादा चीन जा रहा था. सरकार ने तय किया कि उसे चीन नहीं भेजना है तो उसके लिए उसने सीधा रास्ता न लेकर रेलवे के किराए में 300 प्रतिशत की वृद्धि कर दी. इससे आयरन ओर चीन जाने से तो रुक गया, लेकिन सरकार ने यह नहीं सोचा कि इसकी वजह से आयरन ओर हिंदुस्तान की फैक्ट्रियों में भी नहीं जाएगा. इसका असर टाटा, राउरकेला आदि जगहों में स्थित हिंदुस्तान की सारी स्टील फैक्ट्रियों पर पड़ा और इसकी वजह से आयरन ओर का काम करने वाले, खासकर खनन में लगे लोगों की कमर टूट गई. अब हिंदुस्तान में स्टील बनना कम हो गया, स्टील अब चीन से आ रहा है, जो महंगा है और हम वही महंगा स्टील खरीद रहे हैं. हमने एक उद्योग को मारा. कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि सरकार प्याज़ भी खा रही है और जूते भी. ठीक यही उदाहरण सीमेंट का है. 50 रुपये की बोरी 400 रुपये तक बिक गई. कारणों को वित्त मंत्रालय ने दूर नहीं किया.

अजीब चीज़ यह कि जो स्टैंडिग कमेटी लोकपाल को हैंडिल कर रही थी, उसके चेयरमैन अभिषेक मनु सिंघवी एक महिला को जज बनाने की सुपारी लेते हुए कमेटी से बाहर हो गए. उन्होंने इस्तीफा दे दिया. इस उठापटक में प्रणब मुखर्जी का राजनीतिक कौशल दिखाई देता है. आर्थिक मामलों में उनकी पहल बहुत छोटी और भ्रमित यानी कन्फ्यूज्ड दिखाई देती है.

वित्त मंत्रालय से जुड़ी हुई संस्थाएं, चाहे वह आरबीआई हो या दूसरी संस्थाएं, किसी के पास भी सही आंकड़ा नहीं है कि कुल काला धन कितना है. कोई 4 लाख करोड़ रुपये कह रहा है तो कोई 8 लाख करोड़ तो कोई 10 लाख करोड़ और आरबीआई इसे 30 लाख करोड़ बता रहा है. सरकारी एजेंसियों के अलग-अलग आंकड़े बताते हैं कि वित्त मंत्रालय काले धन के ऊपर गंभीर नहीं है. वित्त मंत्रालय का सबसे मज़ेदार विरोधाभास नक़ली नोटों को लेकर है. वैसे तो एक कमाल यह हुआ कि नक़ली नोट हिंदुस्तान के रिजर्व बैंक की ट्रेजरी में पाए गए. उसकी सीबीआई जांच हुई, छापे पड़े, लोग गिरफ्तार हुए, लेकिन उसके बाद क्या कार्रवाई हुई, कुछ पता नहीं. यह भी पता चला कि रिजर्व बैंक से नक़ली नोट बैंकों में भेजे गए. इसके ऊपर वित्त मंत्रालय ने कितना ध्यान दिया, हमें नहीं पता, लेकिन हमें इतना पता है कि वित्त मंत्रालय ने इस पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया. हालांकि हमारी बातें विरोधाभासी लग सकती हैं, पर सच यही है. दूसरी चीज़ यह कि नक़ली नोट के बारे में पी चिदंबरम जब वित्त मंत्री थे तो उन्होंने बयान दिया था कि हिंदुस्तान में जितनी करेंसी मौजूद है, उसमें हर तीसरा नोट नक़ली है. सरकार जब ऐसा बयान देती है तो हमें जान लेना चाहिए कि हमारा अर्थतंत्र, हमारा वित्त मंत्रालय कितना सजग है. उसने इसे रोकने के लिए कुछ क्यों नहीं किया.

आपके सामने एक घटना रखते हैं. आपके सामने इम्तिहान पास करने के दो तरीक़े हैं. दोनों ही तरीक़ों से नंबर बराबर आते हैं. पहला तरीक़ा है कि आप रट्टा मारें और इतने ज़्यादा जवाब रट लें कि आपके सवाल का उत्तर सही हो और आपके 90 नंबर आ जाएं. दूसरा तरीक़ा है कि आपके पास ज्ञान इतना हो कि आपके पास जो सवाल आए, उसका समझ कर उत्तर दें. जवाब वही होगा और आपको भी 90 नंबर ही मिलेंगे. पर गाड़ी तब फंसती है, जब कहीं पर मुश्किल सवाल आ जाए. ऐसा सवाल, जिसका रट्टा नहीं मारा गया हो और तब ज्ञान वाला आदमी पास हो जाता है और रट्टे वाला रुक जाता है. अब तक हमारे देश में साधारण सवाल थे, साधारण समस्याएं थीं, तो हमारे आईएएस एवं मंत्रीगण रट्टा मारकर उनका हल निकालते रहे (चूंकि रट्टा मारकर पास हुए थे), लेकिन अब समस्या टेढ़ी हो गई और सवाल टेढ़ा हो गया, तो अब वे बग़लें झांक रहे हैं. मैं यह नहीं कहता कि वित्त मंत्री भी रट्टा मारकर पास हुए हैं, पर उनकी गतिविधियां यह बताती हैं या उनके तरीक़े यह बताते हैं कि वह भी रट्टा मारकर पास हुए, इसलिए इस समय लड़खड़ा रहे हैं. अजीब फैसले लेते हैं, सीआरआर कम करते हैं, मुद्रा प्रवाह बढ़ जाता है. ज़्यादा पैसे आ जाते हैं, महंगाई बढ़ जाती है. उसे संभालने के लिए एसएलआर कम करते हैं. ज्वैलरी पर एक प्रतिशत टैक्स लगा दिया. फैसला ऐसा किया कि उस एक प्रतिशत का असेसमेंट आपने इंस्पेक्टर पर छोड़ दिया. सारे देश में आंदोलन हुआ. किसी को एक प्रतिशत टैक्स देने में ऐतराज़ नहीं था, लेकिन उसके असेसमेंट के लिए आपने जो इंस्पेक्टर लगा दिया, उस पर ऐतराज़ था.

उसी तरह से लोकसभा में पहली बार, शायद विश्व में पहली बार एक शब्द आया, सेंस ऑफ हाउस. जब अन्ना हजारे के अनशन के समय लोकसभा बुलाई गई तो दादा ने सेंस ऑफ हाउस की रणनीति बनाई और कहा कि लोकपाल बिल पास करेंगे. सदन की उस महत्वपूर्ण बैठक को मुख्यतय: प्रणब मुखर्जी ने ही संभाला. पहली बार या तो सरकार ने लोकसभा की बात यानी सेंस ऑफ हाउस को नहीं माना या लोकसभा ने देश की जनता के साथ धोखाधड़ी की, अपने ही सेंस को एक्शन में

ट्रांसलेट नहीं किया. अजीब चीज़ यह कि जो स्टैंडिंग कमेटी लोकपाल को हैंडिल कर रही थी, उसके चेयरमैन अभिषेक मनु सिंघवी एक महिला को जज बनाने की सुपारी लेते हुए कमेटी से बाहर हो गए. उन्होंने इस्तीफा दे दिया. इस उठापटक में प्रणब मुखर्जी का राजनीतिक कौशल दिखाई देता है. आर्थिक मामलों में उनकी पहल बहुत छोटी और भ्रमित यानी कन्फ्यूज्ड दिखाई देती है. लेकिन यह देश का सौभाग्य है कि वित्त मंत्रालय से प्रणब मुखर्जी को मुक्ति मिल गई. अब प्रणब मुखर्जी देश की तंदुरुस्ती के ऊपर नज़र रखेंगे. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उनके जाते ही यह बयान दिया कि आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिए एनिमल स्पिरिट की ज़रूरत है. इस बयान का भाष्य अभी तक प्रधानमंत्री की तरफ से नहीं आया है. हम उस भाष्य की प्रतीक्षा कर रहे हैं.

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ईमानदार हैं, सौम्य हैं, सभ्य हैं, मृदुभाषी एवं अल्पभाषी हैं, विद्वान हैं. उनके व्यक्तित्व की जितनी भी बड़ाई की जाए, कम है, लेकिन क्या उनकी ये विशेषताएं किसी प्रधानमंत्री के लिए पर्याप्त हैं? अगर पर्याप्त भी हैं तो उनकी ये विशेषताएं सरकार की कार्यशैली में दिखाई देनी चाहिए. अफसोस इस बात का है कि मनमोहन सिंह के उक्त गुण सरकार के कामकाज में दिखाई नहीं देते. वैसे, भारत में प्रधानमंत्री सर्वशक्तिमान होता है. वह देश का सबसे बड़ा नेता होता है. संविधान के मुताबिक वह लोकसभा का नेता होता है. मतलब यह कि उसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन होना आवश्यक है. किसी भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सर्वोच्च कार्यपालक तो जनता का सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है. अगर देश का प्रधानमंत्री लोगों द्वारा चुना हुआ नेता न हो, अगर वह लोकसभा का ही सदस्य न हो, जिसने कभी लोकसभा का चुनाव न जीता हो, जिसने इस मुकाम को सिर्फ इसलिए हासिल कर लिया हो, क्योंकि वह किसी शख्स की निजी पसंद है, तो ऐसे प्रधानमंत्री को क्या कहा जाए. मनमोहन सिंह के व्यक्तित्व और प्रधानमंत्री के लिए ज़रूरी योग्यताओं के बीच काफी दूरी है. पिछले आठ सालों में मनमोहन सिंह इस दूरी को नहीं मिटा पाए हैं.

लाल बहादुर शास्त्री के अचानक निधन के बाद जब इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री चुना गया तो कांग्रेस के कई दिग्गज नेताओं ने उन्हें गूंगी गुड़िया कहा था, लेकिन प्रधानमंत्री बनने के बाद इंदिरा गांधी ने अपने करिश्माई व्यक्तित्व एवं आक्रामक तेवरों से हालात को न सिर्फ अपने पक्ष में कर लिया, बल्कि वह देश की सबसे बड़ी लीडर बन गईं. देश में आपातकाल लगाने के बावजूद इंदिरा गांधी को कुशल नेतृत्व, त्वरित फैसले लेने की क्षमता और प्रभावपूर्ण कार्यों के लिए आज भी याद किया जाता है. उन्हें एक महान नेता का दर्जा हासिल है. दरअसल, हिंदुस्तान की जनता प्रधानमंत्री में एक महानायक ढूंढती है. मनमोहन सिंह पिछले आठ सालों से प्रधानमंत्री हैं. अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि वह जनता की नज़रों में महानायक क्या, नायक भी नहीं बन पाए हैं.

वर्ष 2004 में जब वह प्रधानमंत्री बने, तब उन्हें सोनिया गांधी ने चुना था. कांग्रेस में कई लोग इस पद के दावेदार थे. शायद मनमोहन सिंह की कमियां ही उनकी योग्यता बन गईं. 2004 में मनमोहन सिंह लोकप्रिय नेता नहीं थे. कांग्रेस में उनके पीछे-पीछे चलने वाले न तो कार्यकर्ता थे और न कोई नेता. राजनीति में उनकी साख नहीं थी. 2004 में वह राज्यसभा के सदस्य थे और आज भी राज्यसभा के ही सदस्य हैं. हैरानी की बात तो यह है कि पांच साल प्रधानमंत्री बने रहने के बावजूद उन्होंने 2009 में लोकसभा का चुनाव लड़ना उचित नहीं समझा. हालांकि राज्यसभा का सदस्य रहते हुए प्रधानमंत्री बने रहना कोई गुनाह नहीं है. तकनीकी और क़ानूनी तौर पर यह जायज तो है, लेकिन प्रधानमंत्री अगर जनता द्वारा चुना हुआ व्यक्ति बने तो प्रजातंत्र को मजबूती मिलती है.

जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री चुनी गईं, तब वह राज्यसभा की सदस्य थीं, लेकिन उन्होंने राज्यसभा से इस्तीफा दे दिया. उनका मानना था कि प्रधानमंत्री को लोकसभा में आना ही चाहिए, क्योंकि वह लोगों का प्रतिनिधि होता है. गौर करने वाली बात यह है कि हमने कई लोगों से जब यह पूछा कि मनमोहन सिंह राज्यसभा में देश के कौन से राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं तो ज़्यादातर लोगों ने गलत जवाब दिया. वैसे वह राज्यसभा में असम के प्रतिनिधि के तौर पर हैं, लेकिन अतीत में असम से उनका कोई रिश्ता नहीं रहा. वह न तो असम में जन्मे, न उन्होंने वहां पढ़ाई की और न उन्हें वहां की भाषा का ज्ञान है. मनमोहन सिंह ने 1999 में दिल्ली की दक्षिण दिल्ली सीट से लोकसभा का चुनाव लड़ा था, जिसमें वह हार गए थे. उसके बाद उन्होंने दोबारा कभी लोकसभा का चुनाव नहीं लड़ा.

प्रधानमंत्री में जहां संपूर्ण देश की ताकत होती है, वहीं वह देश की नैतिक शक्ति का भी प्रतीक होता है. असम से राज्यसभा में चुनकर आना और असम में अपने लिए रहने के घर का प्रबंध करना, जहां सिर्फ नौकर रहता हो, नैतिक शक्ति पर पहला प्रश्नचिन्ह खड़ा कर जाता है. एक मज़बूत नेता होने के लिए एक विजन की आवश्यकता होती है. नेता कितना भी ज्ञानी क्यों न हो, अगर उसके पास वर्तमान और भविष्य की समस्याओं से निपटने का ब्लू प्रिंट न हो, तो वह लोगों की समस्याओं का हल नहीं निकाल सकता और अगर कोशिश भी करता है तो नुक़सान हो जाता है. 1991 में जब मनमोहन सिंह ने एक ब्लू

प्रिंट दिया था कि नव उदारवादी नीतियों के लागू होते ही बीस साल के भीतर देश बिजली के मामले में आत्मनिर्भर हो जाएगा, नौकरियां बढ़ जाएंगी, ग़रीबी कम हो जाएगी, रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो जाएगा, भारत विकसित देशों की कतार में खड़ा हो जाएगा. लेकिन, बीस साल बाद आज हम देखते हैं कि इनमें से कुछ भी नहीं हुआ.

देश के सैकड़ों ज़िलों में लोग इस समय भूख, बेकारी और ग़रीबी से कराह रहे हैं. जंगलों और गांवों में रहने वाले लोग सरकार के ख़िलाफ नक्सलवादियों का साथ दे रहे हैं. प्रधानमंत्री ने नक्सलवाद को देश के लिए सबसे बड़ा खतरा भी बताया, लेकिन इस स्थिति से निपटने के लिए उन्होंने क्या किया? जब मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने थे, तब देश में नक्सल प्रभावित ज़िलों की संख्या 80 थी, जो फैसले न लेने की वजह से आज बढ़कर 250 हो गई है. अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री को पाकर लोगों में आशा जगी. खासकर किसानों को लगा कि उनकी मुसीबतें खत्म हो जाएंगी, लेकिन किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी साल दर साल कम होती चली गई. हालत यह है कि वर्ष 2011 में 14,004 किसानों ने आत्महत्या की. इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है? यह कोई नई समस्या नहीं है. जबसे मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने हैं, तबसे उनके सामने किसानों की आत्महत्याओं के सालाना आंकड़े आते होंगे, लेकिन उन्होंने कोई फैसला नहीं लिया. सरकार यहीं पर नहीं रुकी, विकास के नाम पर वह किसानों से उनकी जमीनें छीनकर निजी कंपनियों को देने में जुट गई. मनमोहन सिंह यहां भी चूक गए और गरीबों के पक्ष में कोई भी फैसला नहीं ले सके.

जिस देश का प्रधानमंत्री एक विश्वविख्यात अर्थशास्त्री हो और वहां के सारे आर्थिक सूचकांक धराशायी हो रहे हों, जनता महंगाई से जूझ रही हो, करेंसी की वैल्यू दिनोदिन गिर रही हो, किसान आत्महत्या कर रहे हों, मध्य वर्ग परेशान हो, उद्योगपति यह कहें कि सरकार फैसले नहीं ले सकती, क्योंकि उसे लकवा मार गया है और घोटाले पर घोटाले पकड़े जाएं, तो इसका मतलब साफ है कि उस विद्वान प्रधानमंत्री में स्वयं फैसला लेने की क्षमता नहीं है या फिर उसने खुद को इन सब से अलग कर लिया है और जहां जो भी गड़बड़ियां हो रही हैं, उनकी ओर से अपनी आंखें बंद कर ली हैं.

बेरोज़गारी दिनोदिन बढ़ रही है और विकास दर घटती जा रही है. विकास दर 9 फीसदी से घटकर इस साल की पिछली तिमाही में 5.3 फीसदी पर आ गई है, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय 9 फीसदी की विकास दर को याद करके खुश हो जाता है. प्रणब मुखर्जी जब वित्त मंत्री थे, तब मनमोहन सिंह ने कभी आर्थिक मामले में हस्तक्षेप करने की ज़रूरत नहीं समझी. बैंकों के चेयरमैन की नियुक्तियां रुक सी गईं, प्रधानमंत्री ने कभी कारण जानने की कोशिश नहीं की. महत्वपूर्ण अधिकारियों की पोस्टिंग-ट्रांसफर में देरी को लेकर उन्होंने कभी किसी से जवाब तलब नहीं किया. संसद में 11 महत्वपूर्ण बिल लटके पड़े हैं, इसके अलावा 44 बिलों के ड्राफ्ट तैयार हैं, लेकिन ये सारे ज़रूरी काम भगवान भरोसे छोड़ दिए गए हैं. प्रणब मुखर्जी के सरकार से बाहर जाते ही मनमोहन सिंह सुपर एक्टिव हो गए. अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए उन्होंने एनिमल स्पिरिट की बात कहकर सरकार के कामकाज में बदलाव का संकेत दिया. सवाल यह उठता है कि प्रधानमंत्री जी अब तक क्या कर रहे थे , ऐसी क्या मजबूरी थी कि 2004 से अब तक यह एनिमल स्पिरिट गायब रही, यह प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की कमज़ोरी थी या फिर वह फैसले लेने में असमर्थ थे?

महंगाई की मार ऐसी पड़ रही है कि ग़रीबों के साथ-साथ अमीर भी परेशान हैं. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में महंगाई की जो हालत रही है, वह अर्थशास्त्र की सारी थ्योरी को फेल कर देती है. अगर फसल बर्बाद हो जाए, उत्पादन में कमी हो जाए या फिर बाज़ार में अभाव की वजह से किसी वस्तु की कीमत बढ़ जाए तो समझ में भी आता है, लेकिन बेहतरीन पैदावार के बावजूद कीमतें बढ़ती हैं तो इसका मतलब है कि ज़रूर कुछ गड़बड़ है. मनमोहन सिंह जैसे विश्वविख्यात अर्थशास्त्री को महंगाई के असल कारण नहीं पता होंगे तो फिर किसे होंगे. जब-जब कीमतें बढ़ीं, तब मनमोहन सिंह का बयान आया कि कुछ दिनों में कीमतें कम हो जाएंगी, लेकिन हर बार कीमतें कम होने की बजाय बढ़ जाती हैं. फिर प्रधानमंत्री जी एक दूसरी तारीख दे देते हैं, फिर कीमतें बढ़ जाती हैं. कीमतें लगातार बढ़ती जा रही हैं, इसके साथ ही प्रधानमंत्री की डेडलाइन भी आगे बढ़ती जा रही है. दरअसल, प्रधानमंत्री कोई फैसला ही नहीं कर पाते. वह मजबूर हैं, क्योंकि प्रधानमंत्री की कैबिनेट में ऐसे-ऐसे मंत्री हैं, जो बोल-बोलकर महंगाई बढ़ा देते हैं. वायदा कारोबार का प्रकोप पिछले कुछ सालों में ऐसा बढ़ा, जिससे महंगाई बेकाबू हो गई है. हैरानी की बात यह है कि प्रधानमंत्री इसे रोकने के लिए अब तक किसी नतीजे तक नहीं पहुंच सके हैं.

इतिहास में मनमोहन सिंह को इसलिए याद किया जाएगा, क्योंकि उनके शासनकाल में देश में सबसे ज़्यादा घोटाले हुए. 1992 में जब मनमोहन सिंह वित्त मंत्री थे, तब तीन बड़े-बड़े घोटाले हुए, जिनसे पूरा देश हिल गया. ये तीन घोटाले थे, 1500 करोड़ रुपये का हर्षद मेहता स्कैम, इंडियन बैंक स्कैम और पामोलिन ऑयल स्कैम. जबसे उन्होंने प्रधानमंत्री का पद संभाला है, तबसे घोटालों के सारे रिकॉर्ड टूट गए हैं, जैसे 2-जी घोटाला, कोयला घोटाला, कॉमनवेल्थ घोटाला, सत्यम घोटाला, महाराष्ट्र डैम घोटाला, मनरेगा घोटाला और आदर्श घोटाला. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में हुए घोटालों की सूची बहुत लंबी है. इन घोटालों में सरकार, निजी कंपनियों और विपक्षी नेताओं के एक गठजोड़ का पता चलता है. फैसला न लेने के कारण भ्रष्टाचार की जड़ें और मजबूत होती चली गईं. सरकार की कार्यशैली एवं नीतियों की वजह से घोटालों का रूप विकराल होता चला गया. यह बीमारी अब समाज के सबसे निचले स्तर यानी पंचायत तक पहुंच गई है. मनरेगा जैसी योजनाएं भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गईं. न कोई रोकथाम न कोई फैसला. देश की ग़रीब जनता अपने ईमानदार प्रधानमंत्री की

तरफ आशा भरी निगाह से देखती रही लेकिन मनमोहन सिंह की तरफ से कोई फैसला नहीं आया. प्रधानमंत्री ईमानदार हैं, यह उनके विरोधी भी कहते हैं, लेकिन उनकी इस ईमानदारी की परछाई सरकार के कामकाज पर पड़ती नहीं दिखाई दे रही है.

2004 में लोकसभा चुनाव के बाद मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने. सोनिया गांधी ने उन्हें प्रधानमंत्री तो बना दिया, लेकिन उनकी नेतृत्व क्षमता पर भरोसा नहीं कर सकीं. मनमोहन सिंह शायद देश के पहले ऐसे प्रधानमंत्री रहे, जो अपना मंत्रिमंडल स्वयं नहीं बना सके. कांग्रेस पार्टी ने उन्हें अपने फैसले लेने की आज़ादी नहीं दी. कांग्रेस पार्टी ने सरकार के गठन के तुरंत बाद 4 जून, 2004 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन कराया. यह एक ऐसी संस्था है, जो यूपीए सरकार को नीतिगत सलाह देती है. अगर प्रधानमंत्री को नीतिगत सलाह देने की व्यवस्था बनाई जाती है तो इसका मतलब यही हुआ कि पार्टी को प्रधानमंत्री की बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं है. मजेदार बात यह है कि राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन प्रधानमंत्री करते हैं, लेकिन उसकी अध्यक्ष सोनिया गांधी हैं और उनकी सलाह पर प्रधानमंत्री उसके सदस्यों को मनोनीत कर सकते हैं. मतलब यह कि सलाहकार समिति की कमान प्रधानमंत्री के पास नहीं, सोनिया गांधी के पास है. हैरानी की बात यह है कि इसी सलाहकार समिति के सदस्य प्रधानमंत्री और सरकार के क्रियाकलापों पर नकारात्मक टिप्पणी करने से नहीं चूकते और वे सलाहकार परिषद में बने भी रहते हैं. हाल में ही राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की एक सदस्य अरुणा रॉय ने आरोप लगाया कि मनमोहन सिंह की सरकार भ्रष्टाचार और जवाबदेही को लेकर गंभीर नहीं है. सलाहकार परिषद के सदस्यों द्वारा यह कोई पहला आरोप नहीं है. हैरानी तो तब होती है, जब मनमोहन सिंह इन आरोपों का कोई जवाब नहीं देते. सोनिया गांधी के नेतृत्व वाली इस राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने प्रधानमंत्री की प्रतिष्ठा को सबसे ज़्यादा आघात पहुंचाया है. इससे न सिर्फ़ सरकार के कामकाज पर सवाल उठता है, बल्कि यह प्रधानमंत्री को कमजोर साबित करने की रणनीति है. इससे तो यही साबित होता है कि मनमोहन सिंह में यूपीए का साझा न्यूनतम कार्यक्रम लागू करने की काबिलियत नहीं है.

राजनीतिक तौर पर मनमोहन सिंह को यूपीए के सहयोगी दल और विपक्ष एक अप्रशिक्षित राजनीतिज्ञ मानते हैं. इसके कई कारण हैं. राष्ट्रपति का चुनाव मनमोहन सिंह के लिए हैरान करने वाला है. कांग्रेस के कई लोग उन्हें राष्ट्रपति बनाना चाहते थे. इतना ही नहीं, यूपीए को समर्थन देने वाली ममता बनर्जी ने तो उनका नाम मीडिया के सामने ले लिया. इससे एक उलझन की स्थिति पैदा हो गई. सवाल यह उठता है कि ममता बनर्जी और मुलायम सिंह यादव ने मनमोहन सिंह का नाम क्यों लिया, किसके कहने पर लिया? फ़र्ज़ कीजिए, अगर मनमोहन सिंह की जगह इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री होतीं तो क्या कोई घटक दल उनका नाम राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित करने की हिम्मत कर पाता? ममता बनर्जी को यह हिम्मत कांग्रेस के लोगों से मिली. वजह भी स़ाफ है. मनमोहन सिंह संसद के अंदर कभी एक सक्रिय प्रधानमंत्री के रूप में नहीं उभर सके. विपक्ष के नेताओं के साथ संवाद स्थापित करना, बहस में सक्रिय हिस्सा लेना, कैबिनेट के सहयोगियों को बढ़ावा देना, सरकार के प्रस्तावों के लिए समर्थन जुटाना, संसद के जरिए सरकार के लिए देश में माहौल बनाना और अपने भाषणों से देश एवं सरकार की दिशा-दशा स़ाफ करना आदि प्रधानमंत्री का दायित्व होता है. गठबंधन की सरकार में यह दायित्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि सहयोगी दलों को साथ लेकर चलना भी प्रधानमंत्री का दायित्व है. यूपीए सरकार के दौरान जो कुछ दिखाई दिया, उससे यही कहा जा सकता है कि संसद के अंदर प्रधानमंत्री की इस भूमिका को प्रणब मुखर्जी निभाते आए. यूपीए के लिए समस्या तब-तब पैदा हुई, जब प्रधानमंत्री ने अपना फैसला थोपना चाहा. चाहे वह न्यूक्लियर डील का मामला हो या फिर एफडीआई का, सरकार संकट में आ गई. प्रधानमंत्री ने राजनीतिक कुशलता की जगह भावनाओं का सहारा लिया. कई बार उन्होंने पद छोड़ने की बात कहकर अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर कर दी.

मनमोहन सिंह शायद देश के पहले प्रधानमंत्री होंगे, जिन्हें सभी मंत्रालयों को यह लिखकर भेजना पड़ा कि वे जो भी फैसले लेते हैं, उसकी जानकारी प्रधानमंत्री कार्यालय को दें. यह चिट्ठी लिखने की ज़रूरत इसलिए पड़ी, क्योंकि कांग्रेस के कई बड़े नेता प्रधानमंत्री से पूछकर कोई फैसला नहीं लेते. ऐसा लगता है कि मनमोहन सिंह की सरकार में एक नहीं, कई प्रधानमंत्री काम कर रहे हैं. मनमोहन सिंह के पास इन मंत्रालयों की समीक्षा के लिए व़क्त नहीं है. कहां क्या गड़बड़ियां हो रही हैं, उन्हें इसका भी पता नहीं चलता. यह नेतृत्व की कमी नहीं तो और क्या है?

सरकार लुंजपुंज अवस्था में चल रही है, जिस पर मनमोहन सिंह का कोई नियंत्रण नहीं है. कमजोर नेतृत्व का केंद्र सरकार के कामकाज पर ज़बरदस्त असर पड़ा. न कोई मंत्री फैसले ले रहा है, न किसी मंत्रालय में योजनाएं बन रही हैं. जब नेता ही टालमटोल करेंगे तो भला सेक्रेटरी कैसे काम करेंगे, जिन्हें रिटायर होने में कुछ साल बाक़ी हैं, वे फैसले नहीं ले रहे हैं और जो तत्काल रिटायर होने वाले हैं, वे तो फाइलों के ऊपर बैठ गए हैं. नतीजे के तौर पर पूरे देश में नौकरशाही के स्तर पर एक डेडलॉक आ गया है. प्रधानमंत्री भी यह डेडलॉक जारी रखना चाहते हैं. इस डेडलॉक को तोड़ने में किसी को दिलचस्पी नहीं है. सरकार काम नहीं कर रही है, इस आरोप से निपटने के लिए ही सही, मनमोहन सिंह को पहल करनी चाहिए थी, क्योंकि सरकार सुचारू रूप से अपना काम करे, यही एक सक्रिय प्रधानमंत्री का दायित्व है और एक मजबूत प्रधानमंत्री का कर्तव्य. लेकिन, मनमोहन सिंह खुद को जवाहर लाल नेहरू के बाद दूसरा ऐसा प्रधानमंत्री साबित करना चाहते हैं, जिसने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रमुखता से अपनी भूमिका निभाई. मनमोहन सिंह खुद को इतिहास में एक ऐसे प्रधानमंत्री के रूप में

दर्ज कराना चाहते हैं, जो दुनिया के बड़े-छोटे, सभी देशों में गया और वहां जाकर उसने हिंदुस्तान की तस्वीर को निखारा, लेकिन यहां भी मनमोहन सिंह मात खा गए. जिन बड़े देशों में मनमोहन सिंह गए, वहां से हिंदुस्तान के लिए कुछ नहीं ला पाए. जिन छोटे देशों में गए, वहां भी गंवाकर ही आए, लाए कुछ नहीं.

मनमोहन सिंह शायद देश के पहले प्रधानमंत्री है, जिनकी चुनाव के दौरान कोई अहमियत नहीं होती. पार्टी अपने प्रचार में उन्हें एक स्टार प्रचारक की तरह मैदान में नहीं उतारती. हाल में हुए चुनावों में उत्तर प्रदेश का चुनाव कांग्रेस और राहुल गांधी के लिए निर्णायक चुनाव था. आखिर क्या वजह है कि कांग्रेस मनमोहन सिंह की रैलियां करने में हिचकती है? अगर उन्हें कहीं भेजा भी जाता है तो वह एक खानापूर्ति समझी जा सकती है. इसका मतलब तो यही निकलता है कि कांग्रेस ने यह मान लिया है कि मनमोहन सिंह के प्रचार से पार्टी को कोई फायदा नहीं होने वाला है. उत्तर प्रदेश में कांग्रेस चुनाव हार गई तो हार के कारणों का पता लगाने के लिए एंटनी कमेटी बनी. इस कमेटी ने राहुल गांधी को क्लीन चिट दे दी और हार का ठीकरा मनमोहन सिंह सरकार पर फोड़ दिया. कमेटी ने कहा कि हार के लिए केंद्र सरकार की नीतियां, महंगाई और भ्रष्टाचार ज़िम्मेदार हैं. एंटनी कमेटी की रिपोर्ट एक ऐसा आईना है, जिसमें मनमोहन सिंह की कमज़ोरी को साफ़-साफ़ दिखाया गया. वैसे भी कांग्रेस के लोगों को लगता है कि अगर मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने रहे तो आने वाले चुनाव में पार्टी को कोई सीट नहीं मिलेगी. कांग्रेस और यूपीए से जुड़ी पार्टियों को यह साफ़-साफ़ नज़र आ रहा है कि आने वाले चुनाव में उनका हाल कहीं वैसा न हो जाए, जैसा कांग्रेस का उत्तर प्रदेश में हुआ.

कोई यह कैसे विश्वास करे कि मनमोहन सिंह सचमुच एक मजबूत प्रधानमंत्री हैं .एक नज़ारा पूरे देश ने देखा और देखने वाले हैरान रह गए .लोकसभा में अन्ना हजारे के आंदोलन को लेकर बहस चल रही थी .राहुल गांधी जब भाषण देने के लिए खड़े हुए, तब मनमोहन सिंह लोकसभा में नहीं थे .वह तेज़ी से दौड़ते हुए लोकसभा आए, उन्होंने राहुल गांधी का भाषण सुना .जिस तरह वह भागते हुए अपनी सीट पर बैठे, उससे ऐसा लगा कि जैसे कोई विद्यार्थी क्लास में टीचर के आने के बाद घुसा हो .प्रधानमंत्री को कभी-कभी दुनेया को दिखाने के लिए भी कुछ करना पड़ता है .उसी दिन लोकसभा में लालू यादव ने किसी और संदर्भ के जरिए मनमोहन सिंह को सलाह दे डाली .उनकी तरफ इशारा करते हुए लालू ने कहा, देश और राज लुंजपुंज ढंग से नहीं चलता है, यह रौब से चलता है .मनमोहन सिंह को रौब भी दिखाना नहीं आता है .जो लोग हिंदुस्तान की राजनीति को समझने में चूक करते हैं, वे मनमोहन सिंह की सबसे बड़ी कमज़ोरी को सबसे बड़ी ताकत बताते हैं .दरअसल, मनमोहन सिंह बाज़ारवाद और विदेशी पूंजी के पोस्टर ब्वॉय बन गए हैं और यही प्रधानमंत्री जी की सबसे बड़ी कमज़ोरी है.

इंडोएशियन न्यूज सर्विस-

http://hindi.in.com/hindi/international-news

अमेरिका से दूर हो रहा है पाक, चीन पास आ रहा है **25 मई 2012**

इस्लामाबाद। पाकिस्तान और अमेरिका के तल्ख चल रहे रिश्तों के बीच चीन का एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधिमंडल अगले हफ्ते इस्लामाबाद की यात्रा पर आ रहा है।

अमेरिका और पाकिस्तान के बीच खराब चल रहे रिश्तों के मद्देनजर चीन के अधिकारियों की यह यात्रा महत्वपूर्ण मानी जा रही है । पाकिस्तान ने अफगानिस्तान के साथ लगी सीमा पर उसकी सैन्य चौकी पर पिछले वर्ष(2011) नाटो की ओर से की गयी कार्रवाई में 24 पाक सैनिकों के मारे जाने के बाद नाटो के लिए रसदआपूर्ति मार्ग बंद कर दिया था। पाकिस्तान ने अमेरिका से इस घटना के लिए माफी मांगने को कहा था तथा प्रति ट्रक के हिसाब से फीस बढ़ाने की मांग की थी लेकिन अमेरिका ने उसकी मांगें मानने से इंकार कर दिया है जिससे मार्ग खोलने पर फैसला नहीं हुआ।

पाकिस्तान की अखंडता की फिक्र में डूबा चीन-

बीजिंग। पाकिस्तान की संप्रभुता को लेकर अमेरिका के साथ उसके तल्ख सम्बन्धों के बीच चीन के प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ ने कहा है कि उनका देश पाकिस्तान की संप्रुभता, स्वतंत्रता, क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करने और उसकी आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देने में हरसंभव मदद करेगा।

(05 जनवरी 2012)
चीन पाकिस्तान में सैन्य अड्डा बनाएगा

इस्लामाबाद। दुनिया के सबसे ताकतवर देशों में से एक चीन अब जल्द ही पाकिस्तान में भी अपने सैन्य अड्डे बनाने की तैयारी कर रहा है। चीन और पाकिस्तान का रिश्ता मजबूत होता जा रहा है। सूत्रों के मुताबिक चीन जल्द ही उत्तरी पाकिस्तान के फाटा या उत्तरी पाकिस्तान में सैन्य अड्डा बनाएगा।

वहीं, पाकिस्तान चाहता है कि चीन ग्वादर और बलूचिस्तान में नौसेना के अड्डे बनाए। इस बात के कयास लगाए जा रहे हैं कि पाकिस्तान चीनी सैनिकों को अपनी सैन्य सुविधाओं के इस्तेमाल की इजाजत दे सकता है।

इसके अलावा पाकिस्तान बलूचिस्तान के विद्रोहियों के खिलाफ भी चीन की ताकत का इस्तेमाल करने की योजना बना रहा है। जानकारों का मानना है कि अमेरिका की तरफ से आर्थिक मदद बंद होने की आशंका के बीच पाकिस्तान चीन से ऐसी मदद की आस लगाए हुए है।

20 सितंबर 2011 पाक को मिलेगी नवीनतम चीनी परमाणु तकनीके- **इस्लामाबाद।** परमाणु शक्ति से बिजली का उत्पादन करने की इच्छा रखने वाले पाकिस्तान को जल्द ही इस दिशा में चीन की ओर से नवीनतम तकनीक हासिल हो सकती है। एक दैनिक समाचारपत्र ने सोमवार को खबर दी कि तीसरी पीढ़ी की इस नवीनतम परमाणु प्रोद्यौगिकी के लिए पाकिस्तान और चीन के बीच जारी वार्ता अंतिम चरण में पहुंच गई है। परमाणु तकनीक मिल जाने के बाद पाकिस्तान घरेलू स्तर पर इसका निर्माण करने लगेगा। कहा गया है, "अमेरिका चीन जैसा नहीं है। अमेरिका एफ-16 लड़ाकू विमानों के लिए पूरा भुगतान कराता है और फिर बाद में सारहीन आधार पर विमानों को देने से मना कर देता है। इतना ही नहीं वह लड़ाकू विमानों के लिए किए गए भुगतान को नगद राशि के रूप में वापस भी नहीं करता है और पाकिस्तान से कहता है कि इस राशि के बदले वह उससे गेहूं खरीद ले।"

12 अगस्त 2011 चीन ने पाकिस्तान का संचार उपग्रह प्रक्षेपित किया **बीजिंग।** चीन ने सिचुआन प्रांत स्थित अपने जिचांग उपग्रह प्रक्षेपण केंद्र से पाकिस्तान के लिए एक संचार उपग्रह का प्रक्षेपण किया। यह जानकारी समाचार एजेंसी 'सिन्हुआ' ने शुक्रवार को दी। 'पाकसैट-1आर' ब्रॉडबैंड इंटरनेट, दूरसंचार एवं प्रसारण सहित कई तरह की सेवाएं मुहैया कराएगा और यह यूरोप के कुछ क्षेत्रों, दक्षिण एशिया, मध्य पूर्व और पूर्वी अफ्रीका को समाहित करेगा।

'पाकसैट-1आर' के प्रक्षेपण के लिए 2008 में चाइना ग्रेट वाल इंडस्ट्री कॉरपोरेशन और स्पेस एंड अपर एटमॉसफियर रिसर्च कमीशन ऑफ पाकिस्तान के बीच करार हुआ था। इसके पहले 1990 में चीन ने पाकिस्तान का पहला निम्न कक्षा उपग्रह, 'बीएडीआरए-' लांग मार्च 2ई रॉकेट के जरिए प्रक्षेपित किया था। प्रक्षेपण केंद्र के अनुसार, यह प्रक्षेपण गुरुवार आधी रात के बाद 12.15 बजे किया गया। मार्च-3बी वाहक रॉकेट ने 'पाकसैट-1आर' उपग्रह को लेकर उड़ान भरी।

15 सितंबर 2011 अब कश्मीर पर चीन की नीति बदल चुकी है! **लंदन।** चीन ने अपनी कश्मीरी नीति में बदलाव किया है और अब वह कश्मीर मुद्दे का हल भारत और पाकिस्तान के बीच बातचीत के जरिए सुलझाने का पक्षधर है।

लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स में पढ़ाने वाले एक पाकिस्तानी प्रोफेसर अतहर हुसैन ने कहा, "चीन पाकिस्तान के साथ समान व्यवहार नहीं करता। वह विश्व की महाशक्ति है। चीन अब पाकिस्तान के बिना भी अपनी विदेश नीति संचालित कर सकता है।"

01 अगस्त 2011 पाकिस्तान में प्रशिक्षित आतंकियों ने किया चीन में हमला? **बीजिंग।** चीन ने झिंजियांग उइगुर स्वायत्तशासी क्षेत्र में रविवार को हुए हमले के लिए पाकिस्तान में प्रशिक्षित आतंकवादियों को जिम्मेदार ठहराया है। इस हमले में छह लोगों की मौत हो गई थी, जबकि 15 घायल हो गए थे।

11 अगस्त 2011 राजस्थान सीमा पर चीनपाक कर रहे हैं युद्धाभ्यास-- **नई दिल्ली।** राजस्थान के जैसलमेर से गुजरात के कच्छ के रण तक फैली 1100 किलोमीटर की पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान और चीन से खतरा बढ़ता जा रहा है।

जैसलमेर के रामगढ़ के तनोट क्षेत्र से महज 25 किलोमीटर दूर सीमा पार पाकिस्तान और चीन की सेनाएं युद्धाभ्यास कर रही हैं। लेकिन छिपा एजेंडा यह है कि सीमा के इस पार भारत के तेल और गैस का बीस फीसदी भंडार मौजूद है और कई विदेशी और देशी कंपनियां इस इलाके में तेल और गैस की खोज कर रही हैं। पाकिस्तान सेना की निगाहें इसी भंडार पर हैं। अब चीन की भी नीयत में खोट आ गई है। भारत की सीमा से महज 25 किलोमीटर दूर चीन और पाकिस्तागन साझा युद्धाभ्यामस कर रहे हैं। राजस्थामन में जैसलमेरबीकानेर जिलों से लगती सीमा के पास भारी तादाद में चीनी- सेना और पाक रेंजर्स रेगिस्तानी इलाकों में युद्ध जीतने के गुर सीख रहे हैं। यह अभ्यासस पाकिस्ता्न के रहिमियार खान इलाके के सेम नाला में चल रहा है। इस जगह की सीमा जैसलमेर के तनोट किशनगढ़ इलाके से लगती है।- अभ्यालस में भाग लेने के लिए चीन की पूरी ब्रिगेड मौजूद है। इसमें चीन की पीपुल्सस लिबरेशन आर्मी की 101 इंजीनियरिंग रेजीमेंट और पाकिस्ता।न रेंजर्स के जवान भाग ले रहे हैं।

मालूम हो कि भारत और पाकिस्तान के बीच पहले हुए सीमा करार के मुताबिक नियंत्रण रेखा लाइन ऑफ) कंट्रोल के (50-75 किलोमीटर के दायरे में अगर किसी भी तरह का संयुक्त युद्ध अभ्यास किया जाएगा, तो पहले इसकी जानकारी दूसरे मुल्क को देनी होगी। लेकिन चीन और पाकिस्तान दोनों ने भारत को बताने की जरूरत ही नहीं समझी। हमारी सीमा से सिर्फ 25 किलोमीटर दूर बेफिक्र होकर पाकिस्तान चीन से जंग जीतने की चाल समझ रहा है। ऐसे में बड़ा सवाल यह है कि आखिर हमारी खुफिया एजेंसियां क्या कर रही थीं। एक हफ्ते से चीन की पिपुल्स लिब्रेशन आर्मी के आला अधिकारी पाकिस्तानी सेना को प्रशिक्षण दे रहे हैं, लेकिन हमारे रडार, सैटेलाइट या फिर सेना तक को इस बात की जानकारी नहीं है।

क्या चीन और पाकिस्तान गुप्त तरीके से ये युद्धअभ्यास कर रहे हैं या फिर यह हमारी कमजोरी है कि हम सीमा पार हो रही हलचल को पकड़ने में नाकाम हैं। खतरा सिर्फ यही नहीं है। कश्मीर से सटी सीमा को छोड़ अब पाकिस्तान राजस्थान में भारी मात्रा में सेना तैनात कर रहा है। चीन ने भी पाकिस्तान को भारत से सटी

सीमा मजबूत करने में पूरी मदद देने का वादा किया है। खुफिया रिपोर्टों के मुताबिक चीन की ओर से पाकिस्ता न को हर तरह की मदद मिल रही है। पाकिस्ता्न को भारत के पश्चिमी क्षेत्र से सटे इलाकों में ताकत बढ़ाने के लिए टैंक अपग्रेड टेक्नोलॉजी और मानवरहित विमान भी मुहैया करा रहा है यानी पाकिस्तान अब इन रेगिस्तानी इलाकों में ड्रोन उड़ाएगा, हमारी हर हलचल, सीमा पर हो रही हर हलचल की पाकिस्तान को खबर मिल जाएगी। साफ है भारत को अपनी सीमाओं को दुरुस्त करना होगा। अगर हम आनेवाले वक्त में सीमा पर ड्रोन तैनात करने की सोच रहे हैं, तो पाकिस्तान भी हमसे पीछे नहीं रहेगा।

पाकिस्तान चीन की बेहतरीन तकनीक से लैस हो रहा है। न तो उसे अंतर्राष्टीय कानूनों की परवाह है और न ही किसी समझौते की, इसलिए जरूरी है कि अब भारत भी अपने रुख में सख्ती लाए और इन हरकतों पर लगाम लगाए।

14 सितंबर 2011 भारत चीन से लगी सीमा पर 61 सड़कें बनाएगा **नई दिल्ली।** भारतीय सीमा के आसपास चीन द्वारा किए गए ताबड़तोड़अ ढांचागत विकास का मुकाबला करने के लिए भारत भी अपने सीमावर्ती इलाके में 61 नई सड़कें बना रहा हैं, जिनमें से पंद्रह सड़कों का काम पूरा भी हो गया है।

इसके अलावा पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में करीब 2000 किलोमीटर लंबी सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है और इसे तवांग घाटी रेल नेटवर्क तक भी ले जाने का प्रस्ताव है। सीमावर्ती सड़कों के निर्माण में आ रही बाधाओं पर विचार करने के लिए सीमा सड़क संगठन ने आज से एक मैराथन विचारविमर्श का दौर शुरू किया है-, जिसमें 18 परियोजनाओं के चीफ इंजीनियरों को बुलाया गया है। इस मंत्रणा में सेना प्रमुख और सेना के इंजीनियर चीफ को भी बुलाया गया है, ताकि पूरे तालमेल से सीमा पर बुनियादी ढांचे को मजबूत किया जा सके। सीमा सड़क संगठन को तीन चरणों की सौंपी योजना पर अमल करने करने को कहा गया। इसका पहला चरण 2012 में, दूसरा 2017 में और तीसरा चरण 2022 में पूरा होना है।

17 जून 2011 ब्रह्मपुत्र पर चीन की हरकतें सैटेलाइट से देख रहा है भारत- **नई दिल्ली।** भारत ने गुरुवार को कहा कि उसके पास उपग्रह से प्राप्त चित्र इस बात के प्रमाण हैं कि चीन ब्रह्मपुत्र नदी पर बिजली परियोजना के लिए काम कर रहा है और इससे असम अथवा अरुणाचल प्रदेश को कोई खतरा नहीं है। सरकार के एक शीर्ष अधिकारी ने बताया, "भारत के पास मौजूदा समय में ऐसी तकनीक और उपग्रह हैं जो शानदार, उच्च क्षमता वाली तस्वीरें खींचते हैं। हमने अपने सूत्रों से सुनिश्चित किया है कि चीन यारलुंग त्सांगो के मध्य स्थित जांग्मू पर बिजली परियोजना के लिए बांध बना रहा है। तिब्बत में ब्रह्मपुत्र नदी को यारलुंग त्सांगो) "(कहा जाता है भारत के पास अब पिछले तीन वर्षों से उपग्रह क्षमता मौजूद है। देश ने वर्ष 2007 में काटरेसैट-2 उपग्रह का प्रक्षेपण किया जिसकी क्षमता काफी अधिक है।